ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥

सारे संसार को आर्य बनाओ।

आह्वायक

वर्ष - 2020-21 **विक्रम सम्वत् - 2077**

सम्पादक :-

आचार्य श्याम

दूरभाष - 09811064932, 09350233885

सम्पादन-समिति -

रणवीर सिंह

दूरभाष - 9818281981

राकेश मलहोत्रा

दूरभाष - 9582791580

सन्तोष वधवा

दूरभाष - 9868616260

सुधा कामरा

दूरभाष - 8447083545

कार्यालय :-

आर्यसमाज मन्दिर

महर्षि दयानन्द सरस्वती मार्ग,

जी-ब्लॉक, नारायण विहार,

नई दिल्ली-28

दूरभाष - 9818281981, 9582791580

ओ३म्

*** वन्दना ***

सोमं रारन्धि नो हृदि
गावो न यवसेष्वा।
मर्य्यइव स्व ओक्ये ॥

(ऋ0 1/91/13)

हे सोम रूपी पिता ! जैसे गायें हरे-भरे खेतों के बीच में बैठकर आनन्द का अनुभव करती हैं, जैसे मनुष्य अपने घर में सुखपूर्वक निवास करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है, वैसे ही आप मेरे हृदय में आकर रमण करो।

(पद्यार्थ)

रमो रमो अभिराम, पिता ! तुम रमो रमो अभिराम॥
जैसे धेनु रमें यव-वन में, बसें मनुज निज सौख्यसदन में
वैसे ही प्रिय ! मेरे मन में, विहरो तुम अविराम,
भक्तों के प्रेमार्त्त हृदय में, करो हरे! विश्राम॥

सम्पादकीय

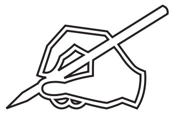

आर्यसमाज नारायण विहार प्रगति के सोपानों पर बढ़ते हुए अपने 49 वर्ष पूर्ण कर रहा है। आर्य-सदस्यों ने जिस प्रकार से इस समाज का शुभारम्भ पारिवारिक सत्सङ्ग के माध्यम से परिवारों में करते हुए एक दृढ़ योजना बनाकर नारायण विहार कॉलोनी में आर्यसमाज के भवन निर्माण की कल्पना को सार्थक किया, वह अविस्मरणीय है। जिन आर्य महानुभावों ने उनकी स्थापित परम्परा को अपने पुरुषार्थ से सार्थक करते हुए इसको आगे बढ़ाया, यदि उन सबका योगदान न होता तो यह कॉलोनी आर्यसमाज जैसी धार्मिक-सामाजिक संस्था से वंचित रह जाती। आर्यसमाज वह संस्था है जिसका स्थापना इसलिये की गई थी कि समाज से पाखण्ड-अविद्या आदि का विनाश होकर वैदिक परम्पराओं की स्थापना हो, जिससे समाज के लोग वेद-यज्ञ-सत्सङ्ग-स्वाध्याय एवं जनकल्याण के कार्यों को वैदिक परम्परा के अनुसार कर सकें। आर्यसमाज इन मान्यताओं की परम्परा मात्र नारायण विहार की कॉलोनी में ही नहीं, वरन् समस्त विश्व में इसी भावना और उद्देश्य को लेकर कार्य करते हुए जन-जागृति का कार्य कर रहा है।

आर्यसमाज नारायण विहार ने नारायण विहार कॉलोनी में अपने कदम बढ़ाते हुए अब तक 49 वर्ष पूर्ण किये हैं; इस काल में अनेकों सामाजिक सुधार के कार्यों को करते हुए समाज में जो क्रान्ति की है, उससे नारायण विहार के निवासियों ने आध्यात्मिक-सामाजिक कार्यों के द्वारा लाभ प्राप्त किया है।

यह आर्यसमाज यज्ञ, सत्सङ्ग-स्वाध्याय आदि कार्यों के साथ-साथ ऐलोपैथिक-होम्योपैथिक-फिजियोथेरेपी चिकित्सालय, सिलाई केन्द्र, कम्प्यूटर कक्षा, बालकक्षा आदि कार्यों के द्वारा सेवा में संलग्न है। अगले वर्ष यह आर्यसमाज अपनी अर्द्धशताब्दी के मनाने की तैयारी कर रहा है। जिसमें अनेकानेक योजनाओं को पूर्ण करने तथा उपलब्धियों का लेखा-जोखा देने तथा अर्द्धशताब्दी को उच्चतम ढङ्ग से मनाने की योजना निश्चित कर रहा है। इस कार्य को पूर्ण करने में कॉलोनी वासियों की जो भूमिका अब तक रही है, उस भूमिका में अगले वर्ष और अधिक उदारता की आवश्यकता है।

आशा है कि आपकी तन-मन-धन की उदारतापूर्ण आहुति इस समाज के पदाधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं को और अधिक सम्बल देगी, जिससे अर्द्धशताब्दी वर्ष एक विशेष वर्ष के रूप में मनाया जा सके। इसके लिए आप अभी से अपनी मनःस्थिति को तैयार कर अगले वर्ष की योजना को सार्थक बनाने में जुट जायें, जिससे आर्यसमाज नारायण विहार का स्थान भारतीय इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णिम-अक्षरों में लिखा जा सके। ❑

वेदामृतम्

आचार्य श्याम

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥

(ऋ० 5/51/11)

[स्वस्ति आत्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः]

पदच्छेद –

स्वस्ति। नः। मिमीताम्। अश्विना। भगः। स्वस्ति। देवी। अदितिः। अनर्वणः। स्वस्ति। पूषा। असुरः। दधातु। नः। स्वस्ति। द्यावा-पृथिवी। सुचेतुना।

शब्दार्थ –

(स्वस्ति) कल्याण **(नः)** हमारा **(मिमीताम्)** मापन करें अर्थात् कल्याण करें **(अश्विना)** सूर्य और चन्द्र, प्राण और अपान **(भगः)** सुख-सम्पदा एवं जीवन रूपी ऐश्वर्य **(स्वस्ति)** कल्याण **(देवी)** दिव्य गुणों वाली **(अदितिः)** अखण्डित, माता तथा पृथिवी **(अनर्वणः)** दृढ़, अचल पर्वतादि **(स्वस्ति)** कल्याण **(पूषा)** पोषण करें, वृष्टि वाले बादल **(असुरः)** प्राणों को देने वाले **(दधातु)** धारण करावें **(नः)** हमारा **(स्वस्ति)** कल्याण **(द्यावापृथिवी)** द्युलोक और पृथिवी लोक, गुरु व शिष्य, प्रकाश करने वाले और प्रकाश प्राप्त करने वाले **(सुचेतुना)** श्रेष्ठ चेतनापरक ज्ञान से।

भावार्थ –

हे विश्व का कल्याण करने वाले पिता ! सूर्य, चन्द्र, धन-सम्पत्ति आदि ऐश्वर्य हमारा कल्याण करें। दिव्य गुणों वाली पृथिवी, अचल पर्वत, पोषण करने वाले मेघ हमारा कल्याण करें। जीवन प्रदायिनी शक्तियां, ज्ञान प्रकाश देने वाले विद्वान् जन और ज्ञान को प्राप्त करने वाले शिष्य जन सर्वत्र हमारा कल्याण करें।

व्याख्या –

इस मन्त्र में विश्व के समस्त देवताओं से कल्याण की प्रार्थना की गई है। प्रस्तुत मन्त्र का देवता 'विश्वेदेवा' है, इस कारण कल्याणकारक देवों का स्मरण करते हुए भक्त उन दिव्य शक्तियों से अपने जीवन के रक्षण-पोषण एवं कल्याण की कामनार्थ प्रार्थना करता है –

1. सूर्य और चन्द्र समान रूप से हमारा कल्याण करें।

2. धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य हमारा कल्याण करें।

3. दिव्य गुणोंवाली पृथिवी अथवा वाक्‌देवी हमारा कल्याण करें।

4. पर्वतादि तथा संसार की दृढ़ अचल शक्तियां हमारा कल्याण करें।

5. प्राणों की पोषक शक्तियां हमें अपनी शक्ति देकर हमारा कल्याण करें।

6. द्युलोक से लेकर पृथिवी लोक तक की समस्त शक्तियां हमारा कल्याण करें। अथवा प्रकाश देनेवाले विद्वान् जन वा उनके शिष्यजन अपने श्रेष्ठतम ज्ञान से हमारा कल्याण करें।

प्रस्तुत बिन्दुओं का विचार दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अभिधा के आधार पर, दूसरा लक्षणा के आधार पर। अभिधा अर्थ में जो पार्थिव जड़-चेतन देव हैं, वे हमारा कल्याण करें, ऐसी प्रार्थना की जा सकती है। वैसे यह निश्चित है कि जड़-चेतन जगत् हम चेतनों की प्रार्थना कैसे स्वीकार करेंगे, क्योंकि जो जड़ है? वह हमारी प्रार्थना कैसे स्वीकार कर सकता है। इसका अभिप्राय है कि प्रार्थना इन सब जड़ देवों के नियन्ता परमात्मा से ही की जा सकती है, कि वे इन दिव्य शक्तियों द्वारा हमारा कल्याण करें।

अब हम लक्षणा के माध्यम से विचार करें तो स्वाभाविक है कि उनके गुणों का या उनसे जो दिव्य सन्देश हमें प्राप्त हो सकता है, यदि उसका अनुसरण किया जाय तो निश्चित ही हमारा कल्याण सम्भव है। जैसे – प्रथम प्रार्थना है – सूर्य, चन्द्रमा हमारा कल्याण करें। क्योंकि 'अश्विना' शब्द निरुक्त के आधार पर सूर्य-चन्द्रमा को कहा है। अब प्रश्न होता है कि – सूर्य और चन्द्रमा हमारा कल्याण कैसे करें? तो उत्तर होगा कि सूर्य की तेजस्विता व प्रकाश तथा चन्द्रमा की सोम्यता को यदि हम धारण करें, तब हमारा कल्याण होगा। इसलिये हमारे शास्त्रों में **'तेजोऽसि तेजो मयि धेहि' 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** और **'चन्द्रमा नक्षत्राणां ईशे'** कहकर तेज धारण करने, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़कर जैसे चन्द्रमा नक्षत्रों का स्वामी व राजा है, उसी प्रकार स्वामी बनने का सन्देश दिया है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए किसी सहायक की यदि आवश्यकता है तो हम अश्विना शब्द के द्वितीय अर्थ को भी संयुक्त कर लें तो शायद अधिक उपयुक्त होगा। अश्विना का दूसरा अर्थ है – अध्यापक और उपदेशक। अध्यापक अपनी शिक्षा के द्वारा और उपदेशक अपनी विद्या के द्वारा यदि कृपा करें तो हम अवश्य ही तेजस्विता, दिव्यालोकता, सरसता, सौम्यता आदि गुणों को प्राप्त कर सकेंगे।

दूसरी कल्याण की प्रार्थना धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य द्वारा की गई है। क्योंकि बिना धनैश्वर्य के जब शारीरिक संरक्षण को पूर्ति ही न होगी, तो शेष उन्नति की कल्पना करना व्यर्थ है। जीवन की प्रत्येक आवश्यकताओं के लिए धन चाहिए। इसलिए हम वेदमन्त्र के द्वारा प्रार्थना करते हैं - **"वयं स्याम पतयो रयीणाम्"** परमात्मन् ! हम धन-ऐश्वर्यों के स्वामी बनें, जिससे हमारे जीवन का कल्याण हो। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि जहां धन का अभाव हो, वहां लोगों को पतन की स्थिति में देखा जाता है, पर जिनके पास धन है, उनका धन भी पतन का कारण बन जाता है। ऐसी स्थिति में जब चारों ओर अकल्याण ही अकल्याण दिखाई देने लगता है, तब विचार आता है कि इससे तो धनहीन होना अधिक अच्छा था। बात दोनों ही बुरी हैं - क्योंकि धन के न होने से अभाव में मर्यादायें टूट जाती हैं और मनुष्य उदरपूर्ति के चक्कर में हर प्रकार के काम करने को उद्यत हो जाता है। पर जिनके पास अधिक धन है, वे मदान्ध होकर समस्त मर्यादायें तोड़ने पर आमादा रहते हैं और पाप करने से नहीं हिचकिचाते। यदि पाप से बचने का उपाय सोचा जाय तो फिर यह मानना पड़ेगा कि उपयुक्त धन हमारे पास हो, जिससे जीवन की मर्यादायें न टूटें और जीवन मर्यादित होकर चल सके, तभी कल्याण सम्भव है। उसके लिए आवश्यक है कि हम धन को अपना न समझें, उसको स्वामी के स्थान पर दास समझें। जिसकी कृपा से जो भी धन हमें प्राप्त हुआ है, उस दयालु-कृपालु को ही उन धन का मालिक समझकर उससे प्रार्थना करें -

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभि-चस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्। अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥ (अथ0 7/115/2)

हे परमात्मन् ! आप हमें वन्दनाबेल (अमरबेल) की तरह शोषध करने वाला धन न प्रदान करें। हमें वह लक्ष्मी प्रदान करें, जो मेरे लक्ष्य में सहायक हो।

साथ में उस जगन्नियन्ता प्रभु से प्रतिदिन याचना करें -**"अग्ने नय सुपथा"** परमात्मन् ! आप हमें सुपथ पर ले चलें, आप हमारे मार्गदर्शक बन जायें। जब ऐसा होगा तो वह धनैश्वर्य हमारे कल्याण का साधन बनेगा, न कि पतन का।

जब तेजस्विता, दिव्यता, सरसता - सूर्य-चन्द्रमा के समान प्राप्त होगी और धनैश्वर्य प्राप्त कर सुपथ पर चलने का संकल्प होगा, तो जैसे पृथिवी सबको धारण करती है, वह धारकशक्ति उस मनुष्य में भी आ जायेगा, जो उपर्युक्त गुणों का अनुसरण कर रहा है। उस स्थिति में यदि कोई उसके मार्ग का बाधक भी बन जाये, तो प्रथम सूनृता वाक् शक्ति के सदुपयोग द्वारा उस बाधा को हटाकर उस दुष्ट को सुमार्ग पर लाने का वह मनुष्य प्रयत्न करेगा, जिस प्रकार अंगुलिमाल डाकू महात्मा बुद्ध की यात्रा का बाधक बना, परन्तु महात्मा बुद्ध की वाक् शक्ति ने जब उसको रुक जाने का आदेश दिया, तब वह सोचने पर मजबूर हुआ कि आज

तक जिसके सामने बात करने की हिम्मत किसी की न हुई, आज उसके सामने ये आवाज़ किसके द्वारा दी जा रही है कि - तू भी रुक जा। महात्मा बुद्ध की तेजस्विता व साहस भरी आवाज़ ने अंगुलिमाल को सोचने पर मजबूर कर दिया, और वह उस महात्मा के सामने उपस्थित हो उसका सच्चा भक्त बनकर उसका बाधक के स्थान पर साधक बन गया। पर इस कार्य के लिए जहां पृथिवी जैसा धैर्य, वाणी का सत्यमय चातुर्य आवश्यक है, वहां पर्वत के समान दृढ़ता, अडिगता का गुण होना भी आवश्यक है। यह साहस मात्र सन्मार्ग पर चलने वाला ही प्राप्त कर सकता है। पर उस संकल्पमय दृढ़ता के गुण को सार्थक करने के लिए आवश्यक है कि पोषक शक्तियों का वह अवलम्बन प्राप्त करे। जहां-जहां भी उसे यह प्रतीत हो कि मुझे इसे विद्वान् से, इस सद्ग्रन्थ से, इस औषधि से शक्ति प्राप्त हो सकती है, उसका वह संचय करता जाय। क्योंकि ये पोषण एक दिन में प्राप्त नहीं होता, वरन् शनैः शनैः करना पड़ता है। जब उस साधक में पोषण शक्ति का संचय हो जाय, तो अब आवश्यक है कि वह उसमें प्राणतत्त्व के घृत की आहुति भी देने के लिए तैयार रहे। प्राणतत्व की घृत रूपी ऊर्जा मूलाधार-स्वाधिष्ठान चक्र से होकर जब सहस्रार चक्र तक पहुंचती है, तब वह साधक पृथिवी लोग से द्युलोक तक की सभी शक्तियों का स्वामी बन जायेगा। तब उसकी शक्ति ऊर्ध्वगामी बन जायेगी। तब उसका कल्याणमय जीवन पृथिवीवासियों के कल्याण का प्रकाश-स्तम्भ जहां बनेगा, वहां वह स्वयं द्युस्थानीय देव बनकर समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित कर दिव्यता प्रदान करने वाला देव बनेगा। इसलिये हमारे शास्त्रों में जब देव शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता है, तब जो दिव्य गुणों से युक्त हो वा जो द्युस्थानीय हो, वह देव कहलाता है।

प्रस्तुत मन्त्र में जहां आधिभौतिक अर्थ में सूर्य-चन्द्रमा, धनैश्वर्य, पृथिवी, वाक्, प्राण तथा अन्यान्य देवों से कल्याण की प्रार्थना की गई है, वहां आध्यात्मिक अर्थ में कल्याण की कामना करने वाले को तेजस्विता, सरसता, ऐश्वर्य की पूर्णता, दिव्य गुणों की दिव्यता, वाक् शक्ति की दिव्य शीतलता, धर्म-कार्य करने वा धर्म मार्ग पर चलने की दृढ़ता, पोषक शक्तियों की पोषकता तथा पृथिवी की धैर्यता, पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक के समस्त देखें की उत्कृष्टता के गुणों को अवश्य ही जीवन में धारण करना पड़ेगा। यदि ऐसा होगा तो निस्सन्देह साधक का कल्याण ही कल्याण है। जब चहुंओर कल्याण से युक्त जिस साधक का जीवन हो जायेगा, तो स्वाभाविक है कि ऐसा मनुष्य विशिष्ट शान्ति, सरलता, सरसता का आगार बनकर विश्व के लोगों का मार्गदर्शक बनकर जहां विशिष्ट महान्पुरुष कहलायेगा, वहां वह परमपिता परमात्मा की दिव्य शक्तियों की तथा प्राकृतिक देवों की शक्तियों का भी कृपापात्र बनकर इस जीवन को भी सार्थक करेगा और पारलौकिक जीवन को भी मङ्गलमय बनाकर आनन्द धाम अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त करने में अवश्य ही समर्थ होगा। ❐

अनासक्ति-योग

रणवीर सिंह (प्रधान)
आर्यसमाज नारायण विहार, नई दिल्ली

आसक्ति का सामान्य अर्थ है, समस्त बाह्य सामाजिक गतिविधियों के प्रति लगाव का अभाव तथा ईश्वर के प्रति परम आसक्ति। इन दोंनों पंक्तियों की जीवन में उपलब्धता से अनासक्त व्यक्ति कर्त्तव्य के अहंकार से मुक्त रहता है। वह किसी भी कार्य को 'करना ही है' इस भाव से करता है। इसलिये कर्मों से उत्पन्न हुए दोष उसे नहीं सताते। शत्रु सेना का संहार, आतातायियों का दमन आदि कार्य अनासक्ति के कारण पवित्र बन जाते हैं, क्योंकि व्यक्तिगत शत्रुता शोधन के लिये नहीं, केवल सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक मानकर किये जाते हैं। इस प्रकार समाज में व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, वैर आदि दोष नहीं पनपते।

ईशोपनिषद् कहती है कि जब तक जीना है, कार्य करते रहना ही होगा। कर्म करना जीवन का स्वभाव है। जीवन प्राप्त करना जैसे अपने हाथ में नहीं है, वैसे कर्म न करना भी अपने हाथ में नहीं है। जब जीवन उसने दिया है तो उसके स्वभावानुसार कोई न कोई कर्म तो विवश होकर करना ही होगा। ईशोपनिषद् ने सब अच्छे कर्मों को एक श्रेणी में रखकर अपनी पहली श्रुति के एक महावाक्य में कहा है - **"तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒"** त्यागपूर्वक भोग। कर्म करो, परन्तु कर्म से चिपट मत जाओ। जो कुछ करो, उससे अलग होकर करो, जैसे कमल का पत्ता पानी में रहता हुआ भी पानी के ऊपर तैरता दिखाई देता है, इसी प्रकार से संसार में रहते हुए भी वासनाओं से मुक्त रहना, उसमें आसक्त न होना जीवन की एक कला है, जो ईश्वर में आसक्त होकर ही सम्भव हो सकता है।

कार्य करने की कसौटी यही है कि उसमें त्याग की पुट है या नहीं। मैं उससे अपने को पृथक् कर सकता हूं या नहीं। मेरे कर्मों के साथ विषय-वासनाओं की लालसा, लोलुपता, आसक्ति तो नहीं बंधी, कोई स्वार्थ तो नहीं चिपटा हुआ, जिसके कारण मैं अलगाव की वृत्ति नहीं ला सकता। यदि मेरी वृत्ति इस प्रकार सुगमता से विचार करने की बन जाती है और मेरे विचार मेरे नियंत्रण में आते प्रतीत होते हैं, तो मैं समझ सकता हूं कि मैं अनासक्त-योग की ओर अपने कदम बढ़ा चुका हूं।

अनासक्ति में हमें समझना होगा कि समस्त संसार में परमपिता परमेश्वर का एकक्षत्र राज्य है, सब कुछ उसी का है; हम सब उसी द्वारा दिये हुए पदार्थों का उपयोग करते हैं। हमें केवल कर्म करने की स्वतन्त्रता है, फल हमारे हाथ में नहीं है। इस प्रकार हम सब एक समान हुए। न कुछ मेरा है न किसी दूसरे का है। जो व्यक्ति यह आभास कर लेता है कि जैसा मैं हूं, वैसे ही सब प्राणी हैं, तो फिर वह किसी से घृणा नहीं कर सकता - **"ततः न विजिगुप्सते"**।

संसार में ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-स्पर्द्धा की लड़ाई होती ही इसलिये है कि हममें कोई अधिक हड़प लेता है और किसी के पास कुछ भी नहीं होता। कर्म करो, परन्तु कर्म करते हुए जो कुछ धन-सम्पत्ति पैदा करो, उसे त्यागभाव धरोहर के रूप में, एक ट्रस्टी के रूप में अपने पास रखो; उसके मालिक मत बन जाओ। हमारे मस्तिष्क में आना चाहिये कि मालिक तो सम्पूर्ण संसार का वही है, हम तो मात्र ट्रस्टी हैं, कुछ दिन बाद छोड़कर चल देंगे, तो अनासक्ति हमारे अन्दर शनैः-शनैः प्रवेश करती जायेगा। धन-सम्पत्ति मेरी है या तेरी - यह भाव घृणा को जन्म देता है। ने मेरी है, न उसकी, सब प्रभु का है; यह भाव प्रेम को जन्म देता है। यही अनासक्ति है।

अपने शरीर, परिवार, संसार के प्रति कर्मों से उदासीन हो जाना अनासक्ति नहीं है। वैराग्य के नाम पर अपनी सरसता, सौहार्द आदि से हीन बना लेना भी अनासक्ति नहीं है। भ्रष्टाचारियों, आक्रान्ताओं, आतंकियों को जीव दया के नाम पर दण्ड न देना भी अनासक्ति नहीं है। सच्चा अनासक्त वह है जो सर्वत्र प्रेम और सरसता का संचार करता है। वह नीरस नहीं समरस होता है। वह कर्म से कभी विमुख नहीं होता। वह जो-जो कर्म करता है, लोक जीवन के लिये अनुकरणीय बन जाता है। श्रीमद् भगवत् गीता के अनुसार महत्त्व कर्म की कोटि का नहीं, कर्म कोई भी हो, उसे एकाग्र होकर करना ही श्रेयस्कर है। कर्म में कुशलता ही योग है - **"योगः कर्मसु कौशलम्"**। कर्म जनित कुंठा के कारण समाज में उत्पन्न जातिगत विषमता का निराकरण कर, परस्पर प्रेम और सहयोग का वातावरण बनाये रखने में अनासक्ति कर महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

अनासक्ति मनुष्य में एक ऐसी आत्मिक चेतना का संचार करती है, जिसका तथ्य है - **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** अर्थात् सबको अपने जैसा मानने वाला। शिक्षित-अशिक्षित, अपने-पराये, ऊंच-नीच, यहां तक कि मानव और अन्य प्राणियों में भी अपना ही स्वरूप देखता है। परिणामतः उसके चरण **"सर्वभूत हिते रताः"** के मार्ग पर चलने प्रारम्भ हो जाते हैं, और शनैः-शनैः हम अनासक्ति-योग को साधन बनाकर प्रभु के बनाये हुए मानव-जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। इसलिये हमें भगवान् श्रीकृष्ण के इस उपदेश को अवश्य ही स्मरण रखना चाहिये -

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि॥

(गी0 3/20-21)

अर्थात् - हे अर्जुन ! तू कृत-अकृत को अपने स्वभाव के कारण नहीं छोड़ सकता, इसलिये तेरे सामने यही रास्ता रह जाता है कि तू अनासक्त रहकर कर्म करता हुआ संसार में रह। जो मनुष्य इस प्रकार अनासक्त भाव से कर्म करता है, वह मनुष्य परमपद को प्राप्त कर लेता है। जनक आदि राजा लोग कर्म द्वारा ही सिद्धि तक पहुंचे थे, इसलिये लोक-संग्रह के निमित्त तू सदा अनासक्त होकर कर्म कर। ❐

समाज सुधारक - महर्षि दयानन्द

सन्तोष वधवा (प्रधाना)
स्त्री आर्यसमाज नारायणा, नई दिल्ली

महापुरुषों के उदय, जन्म, पृथवी के प्रत्येक खण्ड पर होते आये हैं, जिनके अलौकिक जीवन का इतिहास अमर बनकर संसार को सदैव प्रेरणा प्रदान करता है, परन्तु भारतभूमि की विशेषता कुछ अद्‌भुत एवं निराली है। इसे महापुरुषों एवं अन्य ऋषि मुनियों की पावन पुण्यभूमि होने का गौरव प्राप्त है; जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण तथा गुरु नानकदेव जी। परन्तु इस पवित्र पुण्यभूमि पर एक और भी महान् विभूति का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके सुकृत कर्मो ने इस पृथ्वी को और अधिक निखार दिया है, वे थे - महर्षि दयानन्द सरस्वती जी। जो कि युगदृष्टा एवं युगसृष्टा बनकर आर्यावर्त्त में आये। किसी कवि ने कहा है -

अपनी पड़ताल जो करता है, दिन पाके वह बन जाता है।
जीवन होवे सफल उसीका, अन्त में ना पछताता है॥

महर्षि दयानन्द को बोधरात्रि के दिन बोध हुआ कि- मैं जिस शिव की पूजा कर रहा हूं, वह सच्चा शिव नहीं, मुझे सच्चा शिव को पाने की तलाश करती है, खोज करनी है। खोजते-खोजते वह विरजानन्द दण्डी जी के द्वार पर पहुंचे तो दण्डी जी ने पूछा कि - 'तुम कौन हो?' दयानन्द जी ने उत्तर दिया - 'मैं यही तो जानने के लिए आपके पास आया हूं कि मैं कौन हूं।' गुरुजी से शिक्षा प्राप्तकर महर्षि ने संकल्प लिया समाज-सुधार एवं विश्व उद्धार करने का। समाज सुधार के सभी पक्ष - धर्म, संस्कृति, शिक्षा, योगसाधना, अर्थ, राजनीति और राष्ट्रीयता की ओर समग्र दृष्टि डालकर उनको परिवर्तित एवं परिमार्जित कर जनता के समक्ष रखे। उन्होंने कहा- न तो मैं धर्मसंस्थापक हूं और न धर्मनेता। ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त जो धर्म था, जिसको कि मध्यकालीन तथाकथित आचार्यो ने विकृत कर दिया था, उसी विकृति को दूर कर, विशुद्ध धर्म का स्वरूप सबके सामने प्रस्तुत कर रहा हूं, ताकि यह मनुष्यजाति अपने लक्ष्य से न भटक जाये। महर्षि ने विश्व के सभी मानवों को धर्म और राजनीति का यथार्थ दर्शन कराया। मूर्तिपूजा का खण्डन करके ऐकेश्वरवाद की पूजा सिखाई। वेदों को सब सत्य विद्याओं का मूलग्रन्थ मानकर समाजसुधार के लिए चुना; क्योंकि इसका ज्ञान केवल एक देश व जाति के लिए नहीं, बल्कि यह सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। वेद ज्ञानमय हैं, ज्ञान की जीवन का उन्नायक और प्रकाशक है।

संस्कृति और सभ्यता -

हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृति है। **'सा प्र॒थ॒मा सँस्कृ॑तिर्वि॒श्ववा॑रा॒'** के आधार पर यह संस्कृति है। इसी संस्कृति का परिपालन जीवन में प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। पाश्चात्य सभ्यता से मानव का उत्थान नहीं, वरन् वह पतन का साधन है। इसलिये उन्होंने वेदज्ञान रूपी सत्य को अपनाने पर बल दिया।

<u>सत्य</u> – 'सत्यमेव जयते नाऽनृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः' महर्षि सत्य के पुजारी थे। सत्य पर प्राण न्यौछावर कर देना उन्हें स्वीकार था। सत्य के मंच पर खड़े होकर मानव के कल्याण का मार्ग दर्शाया। असत्य का खुलकर विरोध किया। महर्षि सत्य का सदैव समर्थन करते रहे, चाहे समाज कितना भी प्रतिकूल क्यों न रहा हो ? कवि के शब्दों में –

वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या,
जिस पथ में बिखरे शूल न हों।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या,
जब धारायें प्रतिकूल न हों॥

<u>योगसाधना</u> – महर्षि ने योगसाधना व ब्रह्मचर्य पर भी बल दिया। इसी के आधार पर उन्होंने राजा की बग्गी को चलने से रोक दिया। 18 घंटे की समाधि लगाकर वे परमात्म-चिन्तन की सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इतनी अद्‌भुत योगसिद्धि होने पर भी वे स्वयं मुक्ति को प्राप्त नहीं करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि सम्पूर्ण मानवजाति अज्ञान के गर्त से निकलकर कल्याणमार्ग पर चले। उनकी भावना थी कि प्रत्येक को अपनी उन्नति में ही संतुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

<u>शिक्षा</u> – सुशिक्षा के बिना किसी समाज व राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। शिक्षा वह है जो मानव जीवन को सुसंस्कृत करे। समाज के प्रत्येक घटक को ही शिक्षित होना होगा। उन्होंने स्त्रीशिक्षा पर विशेष बल दिया। क्योंकि **'माता निर्माता भवति'** शिक्षित व धार्मिक नारी ही सन्तान को सदृढ़ और सुयोग्य बना सकती है, और राष्ट्रोपयोगी हो सकती है। इतिहास पर दृष्टि डालें तो बालकों को महान् व वीर बनाने का श्रेय नारी को ही जाता है। चाहे श्रीराम हो या श्रीकृष्ण, भगतसिंह हो या शिवा, सीता हो या मदालसा। अतीत की नारी युद्धविद्या में निपुण होने के कारण युद्ध में भाग लेती थी। ऋषि की दृष्टि में स्त्री को वैद्यक, गणित, अर्थ, शिल्प एवं विज्ञान क्षेत्र में कुशल होना अत्यावश्यक है।

<u>दलितोद्धार</u> – महर्षि ने समाज में शूद्रों का भी उत्थान किया,उनको समाज में उच्च स्थान दिलाया। वे कहा करते थे कि शूद्र आर्यजाति का अभिन्न अंग है। उनके उच्च संस्कारों को जाग्रत कर जन्म और वंश की श्रेष्ठता को निर्मूल बताया। जैसे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि आदि सभी के लिए हैं, वैसे ही धर्म संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला आदि सीखने व उपयोग करने का सबको अधिकार है। शूद्रों को ललकार कर जाग्रत किया और कहा – अपने को संवारो, अपनी आत्मा को प्रकाशित करो। इसी उद्देश्य हेतु आर्यसमाज की स्थापना की। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है; अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इस लक्ष्य को आगे रखकर ऋषि ने कहा – 'आर्यसमाज एक निर्माण शाला है, जिसमें श्रेष्ठ मानव का निर्माण होगा।' इसलिये महर्षि ने आर्यसमाज के 10 नियम बनाये, जिनके अनुसार चलने से मनुष्य का जीवन सुन्दर एव आदर्शमय बन जायेगा। आर्यसमाज का अर्थ है – श्रेष्ठ समाज। जब सभी श्रेष्ठ और सज्जन बनेंगे तो संसार श्रेष्ठ बनेगा ही। अर्थव्यवस्था

किसी भी राष्ट्र को समद्ध बनाने का एक उपयुक्त साधन है, जिसकी महर्षि ने कल्पना की। महर्षि का कथन था कि- धन को धर्म और ईमानदारी से कमाया जाये। यदि ऐसा नहीं किया तो फिर अर्थ, अनर्थ बन जायेगा।

राष्ट्रभक्ति - महर्षि पूर्ण राष्ट्रभक्त थे। महर्षि ने अपने शिष्यों की श्रृंखला में सरदार भगतसिंह, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, लक्ष्मीबाई जैसे महान् क्रान्तिकारियों को तैयार कर भारत की स्वतन्त्रता के कार्य में पूर्णरूपेण योगदान दिया।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी ने हर प्रकार से मानव का उत्थान किया। इतना ही नहीं समाजसुधार के कार्यों को करते हुए उन्हें लोगों ने 17 बार विष का प्याला तक पिलाया, परन्तु वे धीर-वीर, साहसी बनकर धर्ममार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। महर्षि का स्वप्न था कि - मेरा देश पुनः गुरुपद को प्राप्त करे, इसी हेतु उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म की बलिवेदी पर न्यौछावर कर दिया। तभी तो किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर लिखा है -

जर्जरित जाति को किया था फूट पापिनी ने,
घिरा घन घटा सी घड़ी थी दुःख द्वन्द्व की।
होता था अपमान यहां महान् मातृशक्ति का,
प्रचलित नीति थी विविध छल छन्द की।
वेदज्ञाता ऋषियों की भूमि पै था अन्धकार,
बात चलती थी ढोंगी मूर्ख मतिमन्द की।
अविद्या अंधेरी निशा नष्ट करने हेतु,
भारत में जाग उठी ज्योति दयानन्द की।

स्वर्ग-नरक कहां ?

आचार्य श्याम

कहते हैं कि एक बार ब्रह्मा जी ने नारद जी से पूछा कि - आप नरक में जाना चाहेंगे या स्वर्ग में। नारद जी ने कहा - भगवन् ! मैं नरक में ही जाना चाहूंगा। ब्रह्मा जी ने नादर जी को नरक में भेज दिया।

एक बार कोई ब्रह्मा जी का अनुचर ब्रह्मा जी से मिलने आया। ब्रह्मा जी के भवन में पहुंचने से पूर्व उसने भवन की दीवार पर स्वर्ग और नरक में जाने वाले लोगों की सूची देखी। जब उस अनुचर ने नरक की सूची में नारद जी का नाम देखा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने अन्दर जाकर ब्रह्मा जी से आश्चर्यजनक मुद्रा में पूछा - भगवन् ! मैंने बाहर नारद जी का नाम नरक में जाने वालों की सूची में देखा, कृपया आप मुझे बतायें कि नारद जी किस पाप के कारण नरक में गये हैं। इस पर ब्रह्मा जी ने अपने अनुचर से कहा- 'वत्स ! मैंने नारद जी को किसी कुत्सित कर्म के रूप में नरक नहीं भेजा, अपितु उनकी इच्छा से भेजा। तुम स्वयं ही जाकर नारद जी ने पूछ लो कि उन्हें नरक में रहने का विचार क्यों आया ?' इस उत्तर को सुनकर वह अनुचर नरक में नारद जी से मिलने पहुंच गया और उसने नारद जी ने नरक में रहने का कारण पूछा। तक नारद जी ने कहा - 'पुत्र ! जैसा व्यक्ति जिस स्थान पर रहता है, उसको वह वैसा ही कर देता है। मैंने देखा कि सभी पापी स्वर्ग में जाना चाह रहे हैं, जब वे सभी पापी लोग स्वर्ग में पहुंच जायेंगे तो वे स्वर्ग को भी नरक बना देंगे। इसलिये मैंने यह विचार किया कि मैं नरक में जाकर वहां के लोगों का सुधार करूं, जिससे उनके जीवन में परिवर्तन आये और वे अपने सुकर्मों से उस नरक को स्वर्ग में बदलने का कार्य कर सकें।'

इस उत्तर को सुन वह अनुचर चुपचाप लौट आया और बार-बार यह विचार करने लगा कि सत्य है कि - श्रेष्ठ व्यक्ति यदि बुरे स्थान पर जायेंगे तो वह अपने श्रेष्ठ कर्मों से उस स्थान को भी श्रेष्ठ बना देंगे।

ईश्वर ने वेदज्ञान किसको, कब और क्यों दिया ?

करणसिंह तंवर
नारायणा, नई दिल्ली-28

वैदिक-धर्म की मान्यता है कि वेद का ज्ञान ईश्वर द्वारा प्रदत्त वह सर्वप्रथम ज्ञान है, जो मनुष्यों को सृष्टि उत्पत्ति के साथ दिया गया। यह मान्यता केवल शब्द प्रमाण पर ही आधारित नहीं है, वरन् तर्क-सङ्गत भी है। वेद की अपौरुषेयता पर विचार करते समय हमारे सामने एक प्रश्न उठता है, जिस पर पहले विचार करना आवश्यक है। वह प्रश्न यह है कि विभिन्न मतावलम्बी सभी लोग अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों को ईश्वरीय मानते हैं। ऐसी स्थिति में किसका ईश्वरीय ज्ञान माना जाये और किसका नहीं। इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि सब मतों के दावों को कसौटी पर कसकर देख लो, जो उस पर खरा उतरे वही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है। यहां कतिपय कसौटियां प्रस्तुत की जाती हैं -

(1) ईश्वरीय ज्ञान मानव सृष्टि के साथ ही सृष्टि के आरम्भ में मिलना चाहिये।

(2) ईश्वरीय ज्ञान किसी देश विशेष की भाषा में न हो।

(3) ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ में किसी देश का भूगोल तथा इतिहास नहीं होना चाहिये।

(4) उसमें कोई भी बात सृष्टि-क्रम के विपरीत न हो।

(5) वह ज्ञान ईश्वर के गुण-कर्म और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिये।

(6) मानव के पूर्ण कल्याण के लिए जितना ज्ञान अपेक्षित है, वह उस ग्रन्थ में होना चाहिये।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कसौटियों पर केवल वेद-ज्ञान ही खरा उतरता है। वेद का प्रकाश ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार ऋषियों के हृदयों में किया था। वेद में न इतिहास है और न उसमें कोई सृष्टिक्रम के विरुद्ध बात है। वेदज्ञान देवभाषा संस्कृत में दिया गया। वेद का ज्ञान परमात्मा के गुण-कर्म और स्वभाव के अनुकूल ही है तथा वेद में मानव के पूर्ण कल्याण का मार्ग प्रशस्त है। ईश्वर ने वेदज्ञान क्यों दिया, इसके निम्न चार कारण मुख्य हैं -

(क) ज्ञान दो प्रकार का होता है - पहला स्वाभाविक ज्ञान तथा दूसरा नैमित्तिक ज्ञान। स्वाभाविक ज्ञान खाना-पीना, सोना-जागना, हंसना-रोना, सन्तान पैदा करना आदि हैं। यह ज्ञान पशु-पक्षियों में अधिक तथा मनुष्यों में कम होता है। कारण पशु-पक्षी इसी ज्ञान से पूरे जीवन अपना काम चलाते हैं।

दूसरा नैमित्तिक ज्ञान वह होता है जो सिखाने से सीखा जाता है। यह ज्ञान मनुष्यों में बहुत अधिक और पशु-पक्षियों में बहुत कम होता है। पशु-पक्षियों का बच्चा पैदा होते ही पानी में तैर सकता है। जैसे - कुत्ते के बच्चों को आप पानी में डाल दीजिये, वह तैर कर बाहर

निकल जायेगा। कारण यह – पशु–पक्षियों के लिए स्वाभाविक ज्ञान है। और मनुष्य के बच्चे को यदि आप पानी में डाल देंगे, तो वह डूब जायेगा। हां, यदि आप उसको तैरना सिखा देंगे तो वह तैर कर पार हो जायेगा। कारण – तैरना मनुष्य के लिए नैमित्तिक ज्ञान है। इस ज्ञान से किये हुए कर्मों का ईश्वर की न्याय–व्यवस्था से उसे अच्छा या बुरा फल मिलता है। मनुष्य भी खाना–पीना, उठना–बैठना, सोना–जागना, आंखें खोलना–बन्द करना, सन्तान पैदा करना – ये सभी काम उसके स्वाभाविक काम हैं। इनका फल ईश्वर नहीं देता। जब ईश्वर ने प्रकृति से जीवों के लिए आदि में सृष्टि तिब्बत में कृत्रिम गर्भाशय बनाकर अनेक नौजवान लड़के–लड़कियों को उत्पन्न करके किया, उस समय उनके माता–पिता, गुरु आदि कोई नहीं थे, जिनसे वे युवा लड़के- लड़कियां चलना, फिरना, बोलना आदि आगे- सीख सकें। उस समय उनकी ईश्वर ही माता- पिता तथा गुरु था। इसलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों अग्नि–वायु–आदित्य व अङ्गिरा के हृदयों में चार वेद क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद प्रकाशित करके उनके मुख से उच्चारित करवाये। ज्ञान ईश्वर प्रदत्त था और उच्चारित उन चार ऋषियों ने किया।

उदाहरण के लिए – जिस प्रकार एक व्यक्ति माइक पर बोलता है, तो बोलता तो वह व्यक्ति है और उसकी आवाज़ को प्रेषित माइक करता है। ठीक इसी प्रकार जो वेदज्ञान चार ऋषियों द्वारा उच्चारित किया गया, वह ज्ञान तो ईश्वर का था, लेकिन उच्चारित करने वाले ऋषि थे। उन ऋषियों के मुख से सबसे पहले वह ज्ञान ब्रह्मा ऋषि ने सुना। ब्रह्मा की बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्होंने चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया और फिर उसे बाक़ी जनता को सुनाया। और फिर ब्रह्मा से सुनकर माता–पिता ने अपनी सन्तान को तथा गुरु ने अपने शिष्यों को सुनाया। इस प्रकार बाप से बेटे को और गुरु से शिष्य को सुनने–सुनाने की परम्परा चालू हो गई, जो अब तक चली आ रही है। महाभारत तक तो वेद ज्ञान का प्रचार व प्रसार बराबर चलता रहा, परन्तु महाभारत के भीषण युद्ध में अधिकतर योद्धा, विद्वान्, आचार्य आदि या तो मारे गये या मर गये। तभी तो महाभारत के बाद मूर्ख, अविद्वान् व स्वार्थी लोगों ने अपने–अपने ढंग से अनेक मत–मतान्तर चला दिए, जिससे वेद–ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया। वेद–ज्ञान में ईश्वर ने मनुष्य को अपने जीवन में क्या काम करना चाहिये और क्या काम नहीं करना चाहिये, सब दिया है। वेदों के अनुसार चलने से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत, समृद्धिशाली व सुखी तो बनाता ही है, साथ में धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष की प्राप्ति भी करता है, जो मनुष्य का उद्देश्य है।

इसीलिये संसार में मनुष्य योनि को सबसे श्रेष्ठ व उत्तम योनि माना गया है; क्योंकि मोक्ष पाने का द्वार भी मनुष्य योनि द्वारा ही सम्भव है, अन्य योनियों द्वारा नहीं।

(ख) ईश्वर का मनुष्य को वेद–ज्ञान देने का दूसरा कारण उसके जीवन को सुखमय बनाना है। वेदज्ञान मनुष्य मात्र का विधान है। जैसे

किसी देश या राष्ट्र का विधान होता है, वह देश उसी विधान के अनुसार चलता है, तभी उस देश में सुख व शान्ति बनी रहती है। देश को चलाने के लिए जैसे विधान जरूरी है, वैसे ही सृष्टि को चलाने के लिए वेदज्ञान जरूरी है, जिसके अनुसार चलने से मनुष्य सुख व शान्ति को स्वयं भी प्राप्ति करता है और अन्यों को भी सुखी बनाता है।

(ग) तीसरा कारण है – बुद्धि के लिए ईश्वर ने वेदज्ञान दिया। जिस प्रकार ईश्वर ने मनुष्य की पांच ज्ञानेन्द्रियों के लिए पांच तत्त्व दिए, जिनके सहारे वह अपना जीवन चलाता है। जैसे आंख के लिए अग्नि दी, जिसके प्रकाश से आंखें रूप को देखती हैं। कानों के लिए आकाश बनाया, जिसके सहारे वह शब्द सुनता है। नाक के लिए पृथिवी बनाई, जिससे वह गन्ध को ग्रहण करता है। जिह्वा के लिए पानी बनाया, जिससे वह रस का अनुभव करती है और त्वचा के लिए वायु बनाई, जिससे वह स्पर्श करती हैं। ये पांचों तत्त्व ईश्वर ने सृष्टि बनाने के साथ ही मनुष्यों के लिए बना दिये थे।

इसी प्रकार बुद्धि के लिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में ही वेदज्ञान दे दिया, जिसके अनुसार चलने से वह अपने जीवन को उन्नत व सुखी बना सके। यदि ईश्वर वेदज्ञान न देता तो बुद्धि अपना कार्य नहीं कर पाती और उसका बनना व्यर्थ हो जाता। वेदों को पढ़कर मनुष्य बुद्धि से चिन्तन व मनन करता है और अपने जीवन को उन्नत व सुखी बनाता है। यह बात भी सत्य है कि यदि ईश्वर ने मनुष्य उत्पत्ति के आरम्भ में वेदज्ञान न दिया होता तो मनुष्य पशुवत् ही रह जाता।

(घ) ईश्वर का मानव को वेदज्ञान देने का चौथा कारण है कि वेद उसका निर्देश-पत्र; जैसे निर्माता यदि कोई मशीन बनाता है तो उस मशीन का प्रयोग कैसे किया जाये- ये बातें एक लघु पुस्तिका में लिखकर अपने ग्राहक को देता है, जिसके आधार पर ग्राहक उस मशीन का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त निर्माता वर्तमान समय में एक कारीगर को खरीददार के घर भेजकर मशीन को फिट करवाता है तथा उसके प्रयोग करने का प्रदर्शन भी करवाता है, ताकि मशीन का उचित प्रयोग हो और खरीददार को भी कोई कठिनाई न हो। ठीक इसी प्रकार ईश्वर ने भी मनुष्य की उत्पत्ति के साथ-साथ वेदज्ञान भी मनुष्यों के लिए दिया, जिसको पढ़कर तथा उसके अनुसार चलकर धर्म-अर्थ-काम को धर्मानुसार व कर्त्तव्यभाव से करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है। इसको पाने के लिए ही जीव मनुष्य-योनि में आता है। ❐

वेद किन का नाम है ?

"जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको 'वेद' कहते हैं।"

(महर्षि दयानन्द सरस्वती)

भारतीय वाङ्मय में ज्योतिष का महत्त्व

आचार्य सुधाकर
नारायण विहार, नई दिल्ली

सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान-कला-कौशल की समृद्धि से युक्त जितना साहित्य भारतवर्ष में है, उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं है। भारतीय वाङ्मय में आज भी अनेकानेक ऐसे-ऐसे अद्भुत ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिन पर पाश्चात्य विद्वानों की अभी तक दृष्टि नहीं गई है। जितनी भी दृष्टि उनकी आज तक गई है, वे उन ग्रन्थों को देखकर अवाक् हैं, इसलिये वर्त्तमान में अमेरिका की अन्तरिक्ष ऐजेंसी **'नासा'** भारत की 67000 पाण्डुलिपियों पर शोध का कार्य कर रही है। हमारे पार इतना विशाल समृद्ध साहित्य तब हैं, जबकि आक्रान्ता मुग़लों ने नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों के विशाल पुस्तकालयों को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया। यदि वह साहित्य भी आज हमारे पास होता तो उसका अवलोकन करने में अन्य देशों के विद्वानों की कई पीढ़ियां खप जातीं।

आदिकाल से भारतीय वाङ्मय का शुभारम्भ **'वेद'** से होता है। यह निर्विवाद सत्य है कि वेद से प्राचीन ग्रन्थ विश्व में अन्य कोई नहीं। सृष्टि की आदि में सृष्टि का विधिवत् संचालन करने के लिए परमात्मा ने अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा नामक चार ऋषियों के हृदय में जो ज्ञान प्रकट किया, वह ज्ञान ऋक्-यजु-साम व अथर्व नामक चार वेदों के रूप में प्रकट हुआ। वेदों का अनुशीलन करने के लिए भारतीय मनीषी ऋषि-मुनियों ने छः वेदाङ्गों का सृजन किया, उनके नाम हैं - **शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द** और **ज्योतिष।** ध्वनि, वर्णों का सम्यक् उच्चारण करने के लिए **'शिक्षा'** वेदाङ्ग का, याज्ञिक प्रक्रिया का समुचित अनुष्ठान करने के लिए **'कल्प'** वेदाङ्ग का, शब्दों का यथार्थ परिज्ञान करने के लिए **'व्याकरण'** वेदाङ्ग का, शब्दों के अर्थो का सम्यक् निर्वचन करने के लिए **'निरुक्त'** वेदाङ्ग का, वेदमन्त्रों की सीमा के लालित्य के आच्छादन के लिए **'छन्द'** का और याज्ञिक प्रक्रियाओं व विभिन्न कार्यों के काल का निर्णय करने के लिए **'ज्योतिष'** वेदाङ्ग का निर्माण किया। आज इन वेदाङ्गों के समस्त साहित्य में कुछ तो उपलब्ध हैं और कुछ अनुपलब्ध। पर यहां हम मात्र ज्योतिष रूपी वेदाङ्ग की महत्ता का वर्णन इसलिये करना चाहते हैं कि ज्योतिष को पाखण्ड का, ठगने का वा अर्थोपार्जन करने कुछ लोगों द्वारा साधन मानकर इसके स्वरूप को विकृत कर दिया है। कुछ लोगों का विचार यह है कि ज्योतिष भाग्यफल का कथन करनेवाला ग्रन्थ है। यदि ऐसा होता तो महाभारत में फिर ऐसा वर्णन क्यों आता, जिसमें स्पष्ट कहा है -

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव शुभाशुभनिवेदकाः।
मानवानां महाभागे न तु कर्मकराः स्वयम्॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

अर्थात् - नक्षत्र-ग्रह, शुभ-अशुभ के मात्र निवेदक हैं, जबकि कर्त्ता द्वारा किया गया स्वकर्म ही कर्मफल का कारक होता है।

अतः ज्योतिष को मात्र भाग्यफल का ग्रन्थ न मानकर उस ग्रन्थ की महत्ता और उपादेयता का परिज्ञान करें तो प्रतीत होगा कि ज्योतिष के बिना हमारे जीवन का कालचक्र चल ही नहीं सकता। ज्योतिष वेदाङ्ग के सम्बन्ध में महर्षि पाणिनी ने जिस रूपक की संरचना की है वह अवश्य ही विचारणीय है। उन्होंने अपने शिक्षाग्रन्थ में समस्त वेदाङ्गों का पृथक्-पृथक् रूप में निम्न प्रकार से वर्णन किया है -

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

(पाणिनीय शिक्षा 41, 42)

अर्थात् - वेद रूपी शरीर के पैर छन्द हैं, दोनों हाथ कल्प हैं, आंखें ज्योतिष हैं, कान निरुक्त हैं, नासिका शिक्षा है, और मुख व्याकरण है। जो मनुष्य सम्पूर्ण वेदाङ्गों का अध्ययन कर वेदों का अध्ययन करता है, वह मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिरोमणि' में भी कहा है -

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं
मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिः
चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥

(सि0 मध्यमा0 11)

विद्वानों ने इस ज्योतिष को वेद की आंख कहकर वेदाङ्गों की महत्ता का बखान किया है। जैसे कान, नासिका, आदि शरीर में होने पर भी बिना आंख के मनुष्य समस्त कार्य करने में समर्थ नहीं हो पाता, वैसे ही बिना ज्योतिष के मनुष्य वेदविद्या का सम्यक् उपयोग नहीं कर पाता।

इन प्रमाणों से यह तो सिद्ध है कि ज्योतिष वेदाङ्गों की श्रृंखला में विशिष्ट स्थान रखता है। ये बात पृथक् है कि आप उसके ज्ञान का उपयोग किस प्रकार से करते हैं। किसी भी वस्तु की उपयोगिता-अनुपयोगिता मनुष्य की बुद्धि पर निर्भर है, इसलिये हम ज्योतिष के स्वरूप को खुली दृष्टि से देखें और उसका समुचित लाभ प्राप्त करें।

भारतीय ज्योतिष में प्राचीन ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, जो भी वर्त्तमान में प्राप्य हैं, उन समस्त ग्रन्थों के आधार पर ज्योतिषविदों ने ज्योतिष को तीन भागों में बांटा है। जिस प्रकार उपनिषदों ने धर्म के तीन भागों को स्कन्ध नाम दिया है, उसी प्रकार ज्योतिष के भागों को भी स्कन्ध नाम दिया है। **'नारद संहिता'** नामक ग्रन्थ में लिखा है -

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्॥

(नारद संहिता 1/4)

अर्थात् - वेद का निर्मल चक्षु ज्योतिष से उत्तम कोई शास्त्र नहीं। इसके तीन स्कन्ध हैं - सिद्धान्त , संहिता , और होरा।

(शेष .... पृष्ठ 19 पर)

यज्ञोपवीत का महत्त्व

आचार्य चन्द्रशेखर
विकासपुरी, नई दिल्ली

भारतीय संस्कृति का प्रतीक यज्ञोपवीत है। यह विद्या का चिह्न है। जैसे बिना विवाह संस्कार के व्यक्ति को गृहस्थ का अधिकार नहीं मिलता, उसी प्रकार यज्ञोपवीत धारण किये बिना यज्ञादि करने का अधिकार नहीं मिलता।

आर्यजाति की इक पहचान है यज्ञोपवीत।
आर्य नर-नारियों की शान है यज्ञोपवीत।
धर्म है यज्ञोपवीत ईमान है यज्ञोपवीत।
हम ये कहते हैं हमारी जान है यज्ञोपवीत॥

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, वाचक्नवी गार्गी, भगवती सीता, लोपामुद्रा, श्रद्धा, सरमा, रोमशा, विश्ववारा, घोषा आदि सभी नर-नारी यज्ञोपवीत धारण करते थे। मनुष्य जिन परिस्थितियों में जन्म लेता है, पलता है और बढ़ता है, वह स्वाभाविक रूप से तीन ऋणों से ऋणी होता है। उस पर पितृऋण, देवऋण तथा ऋषिऋण होते हैं। उत्तम सन्तान के निर्माण से पितृऋण, यज्ञ हवन से देवऋण तथा स्वाध्याय के द्वारा ऋषिऋण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है - यज्ञोपवीत।

मां के गर्भ में भौतिक व मानसिक शरीर का निर्माण नाभि से लगे उपवीत (तंतु) के कारण होता है, वैसे ही प्रकृति (अदिति) मां के गर्भ में भावनात्मक शरीर की उत्तम निर्मिति के लिए यज्ञोपवीत आवश्यक है। तीन ऋणों से मुक्त होने के लिए तीन सूत्रों का पहनना अनिवार्य है। ऋणों को कन्धों पर वहन करते हुए उऋण होने के लिए सदा कटिबद्ध रहना चाहिए, इसीलिए यज्ञोपवीत वाम कन्धे पर होता हुआ दक्षिण में कटिप्रदेश तक होता है।

जिनसे हम लेते हैं वो हमारे द्वारा वापिस किये जाने का मोहताज नहीं और न हमसे कोई अपेक्षा है। जो कुछ भी हमें देते हैं, वह हमें यह स्मरण दिलाते हुए दे रहे हैं तुमसे हमारी कोई अपेक्षा नहीं है। हम मात्र इतना चाहते हैं कि तुम अपनी उपेक्षा मत करो, तुम्हें कर्त्तव्य बोध हो और तुम्हारा सब प्रकार से शोध हो। यदि देखा जाय तो इसमें लाभ हमारा ही है, हम अपना ही निर्माण कर रहे हैं, लेकिन मात्र निर्माण ही क्यों ? यदि हम निर्वाण के अधिकारी बनना चाहें तो हमें हमने जो कुछ दूसरों से लिया है, वह हम भी औरों को दें; यही महत्त्व है - यज्ञोपवीत का।

तीन सूत्रों का सन्देश -

(1) त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत् तरति जन्म-मृत्यु। तीन अग्नि, ज्ञान, कर्म, उपासना की अग्नि द्वारा तीन से सन्धि अर्थात् तीन ऋणों को याद करके उनसे उऋण होने के लिए तो तीन कर्म यज्ञ, अध्ययन, दान की भावना अपनाता है, वह जन्म-मृत्यु से पार हो जाता है, मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्मानन्द में लीन रहता है।

(2) सत्व, रज, तम - ये तीन गुण हैं। इन गुणों से ऊपर उठकर त्रिगुणातीत होना है।

(3) तीन गुरु हैं – माता-पिता और आचार्य। इनकी सेना और आदर करना है।

समस्त विश्व त्रिशब्दात्म सूत्रों में विविध रूप से गुंथा हुआ है। इन तीन सूत्रों में सारे विश्व का विज्ञान भरा हुआ है। ऋषि दयानन्द ने नारी के उत्थान के लिए जो कुछ किया, वह सभी जानते हैं; मात्र जानते ही नहीं, साभार मानते हैं। जिस नारी को कभी पढ़ने की अधिकारिणी नहीं माना जाता था, उसी नारी को ऋषि ने पुरुष का मात्र समपार्श्व ही नहीं रखा, अपितु इससे भी आगे बढ़कर उसका निर्माण करनेवाली माता को गरिमा प्रदान की। सभी प्रकार के अधिकार देकर नई क्रान्ति प्रस्तुत की। उन्होंने यज्ञ में पुरुष के साथ नारी को बैठने को अनिवार्यता पर बल दिया। पुरुष निरंकुश स्वेच्छाचारी न होने पाये, यह सुनिश्चित करने के लिए ऋषि ने उसे पत्नी के रूप में एक मार्गदर्शक दिया।

यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र –

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापते-र्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ 1 ॥

ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ 2 ॥

पावनतम यज्ञोपवीत यह जिसका प्रभु ने किया विधान।
दीर्घ आयु बल तेज आदि सब करता हमको सदा प्रदान।
यज्ञ आदि शोभन कर्मों के ले जाता यह हमको पास।
धारण करता हूं इसको मैं, रख मन में अविचल विश्वास॥

यज्ञोपवीत के लाभ –

1. आयुष्यम् – आयु को प्रदान करने व बढ़ाने वाला है।

2. बलम् – बल को बढ़ाने वाला है।

3. तेजः – तेज को देने वाला है।

4. यज्ञस्य – यज्ञकार्य के लिए योग्य बनाता है।

संस्कार हमारी मति को गति देता है। संस्कार वह आधारशिला है, जिस पर व्यक्तित्व का भवन खड़ा है। संस्कार मानवीय-गुणों का संचार करते हैं, दुर्गुणों का संहार करते हैं और उत्तम गुणों का आधान करते हैं।

यज्ञापवीत एक कर्त्तव्यनिष्ठ, संस्कार-शील और गुरुजनों के प्रति अभिवादनशील व्यक्ति की पहचान है। जो उत्तम कर्मों में अपने को लगाये रहना चाहता है, वह उत्तरदायित्वों से कभी कतराता नहीं, वरन् सहर्ष उन्हें धारण करता है। यज्ञोपवीत धारण करना उसकी संकल्पशीलता का द्योतक है। वह अपने व्रत से डिगे नहीं, इसके लिये यह आदेश भी दिया गया है कि धारण करने के उपरान्त उसे उतारे नहीं। ऋषि दयानन्द के इस मार्मिक कथन में यही भाव व्यञ्जित होता है।

विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान, ईसाईयों के सदृश बन बैठना, यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और तमगों आदि की इच्छा करते हो, तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था ? श्रेष्ठतम कर्म करते-रहने की प्रतिज्ञा करना ही यज्ञोपवीत धारण करना है।

क्या आप जानते हैं ? –

शिवाजी के यज्ञोपवीत संस्कार हेतु 28 मई सन् 1674 का दिन निश्चित किया गया। पचास हजार ब्राह्मण इकट्ठे हुए। चार महीने

रायगढ़ में रहे, उनके निमित्त 13 करोड़, 87 लाख, 79 हजार रुपया खर्च हुआ। फिर भी शिवा जी को गायत्री मन्त्र का अधिकार नहीं मिला। ऋषि दयानन्द की कृपा से आज गायत्री मन्त्र दुनिया के कोने-कोने में गुंजायमान हो रहा है।

आइये प्रतिज्ञा लें –

1. हम प्रतिज्ञा करते हैं कि सृष्टिकर्त्ता परमात्मा उसकी सृष्टि और ईश्वरीय ज्ञान में हमारी आस्था रहेगी।

2. जीवन के उदात्त मानव-मूल्यों की रक्षा करते हुए हम बराबर स्नेह और सौमनस्य का प्रसार करेंगे और किसी ऐसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देंगे, जिससे आपस में ईर्ष्या की भावना बढ़े।

3. जीवन में अण्डे, मांस, मछली, शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करेंगे।

4. बिना जातिभेद, वर्णभेद के हम दीन, हीन, पीड़ितों, असहायों, रोगियों और अशक्तों की यथाशक्ति निष्काम भाव और निस्स्वार्थता से सेवा करेंगे। ❐

आर्य कौन ?

न वैरं उद्दीपयति प्रशान्तं,
न दर्पं आरोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोति अकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥

(महाभारत)

जो शान्त हुई झगड़े की बात को पुनः नहीं उघाड़ता। जो कभी अभिमान नहीं करता। जो कभी उदासीनता में डूबकर दुःखी नहीं होता और जो आपात्काल में भी बुरा कार्य नहीं करता, वह आर्य है।

(पृष्ठ 16 का शेष भाग ......)

आईये इन तीनों स्कन्धों का एक संक्षिप्त परिचय हम प्राप्त कर लें –

(1) सिद्धान्त स्कन्ध – इस स्कन्ध में अंक गणित, बीजगणित की विद्याओं का विवेचन करते हुए ग्रहों की गति, मास, अधिमास आदि भेदों का निरूपण किया गया है। इसी निरूपण को आचार्य वराहमिहिर ने 'पैतामह-वसिष्ठ-रोमक-पौलिश और सौर नामक विद्वानों के विचारों को उपस्थित कर "पञ्चसिद्धान्तिका" नामक ग्रन्थ की रचना की है। ज्योतिषाचार्य आर्यभट्ट ने भी इसी सिद्धान्त स्कन्ध के गणित सिद्धान्त का स्पष्टीकरण 'आर्यभटीयम्' नामक ग्रन्थ में किया है।

(2) संहिता स्कन्ध – समष्टि का अध्ययन करके फल सूचित करने वाले भाग को संहिता स्कन्ध नाम दिया गया है। इसमें गणित-फलित दोनों का समन्वय है। आचार्य वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' नामक ग्रन्थ में गर्ग-पराशर-असित-देवल-कश्यप-भृगु-वसिष्ठ-बृहस्पति आदि अनेक विद्वानों के मन्तव्य की चर्चा की है। नारद संहिता भी इसी स्कन्ध के अन्तर्गत आता है।

(3) होरा स्कन्ध – व्यष्टि का अध्ययन कर, उसके अनुसार फल निर्देशन करनेवाला भाग होरा स्कन्ध कहलाता है। पाराशर होराशास्त्र, बृहज्जातक, प्रश्नतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, स्वरोदय तथा स्वप्न विज्ञान इसके विभाग ग्रन्थ हैं।

आज आवश्यकता है कि इस वेदाङ्ग के समुचित शोध व अध्ययन की, जिससे हम वेद का सम्यक् निर्वचन व अनुशीलन कर सकें। ❐

वैदिकधर्म का विस्तार कीजिये

ओमप्रकाश गुप्त
(इंजीनियर) कुआं गली, मथुरा

यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥ (वैशेषिक दर्शन 1/2)

जिससे यथार्थ उन्नति और परम कल्याण की सिद्धि हो, वह धर्म है।

उपरोक्त सूत्र से स्पष्ट है कि वही धर्म ग्रहण करने योग्य है, जिससे यथार्थ उन्नति तथा परम कल्याण की प्राप्ति हो। सम्पूर्ण दुराग्रह और हठ को छोड़ इस तथ्य पर विचार करें तो यह निश्चय है कि पृथ्वी लोक ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि में यदि कहीं भी मनुष्य नामक प्राणी की उपस्थिति है तो 'वैदिकधर्म' ही एकमात्र धर्म है, जो प्रत्येक मनुष्य को यथार्थ उन्नति और परम कल्याण प्राप्त कराने में समर्थ है। यथार्थ उन्नति का अर्थ है - आत्मबल, और परम कल्याण का अर्थ है - मोक्ष की प्राप्ति। **"कारणभावात् कार्य भावः"** ईश्वर द्वारा सृष्टि के निर्माण का एकमात्र कारण 'जीव' को मोक्ष प्राप्त कर अवसर देना है।

हम और आप किन्हीं पूर्व जन्मों के शुभ कार्यों और पुण्यों के प्रभाव से कर्मफल रूप में प्राप्त **'वैदिकधर्म'** के अनुयायी हैं। महर्षि दयानन्द का हम पर गुरुतर ऋण है। उस महान् आत्मा ने हमें भूले व बिसरे वैदिकधर्म का पुनः ज्ञान कराया। हम उनके द्वारा स्थापित जीवन संविधान अर्थात् आर्यसमाज के नौवें नियम 'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये' को कार्यरूप में परिणित कर 'ऋषि-ऋण' तथा कृतघ्नता के पाप से मुक्त हो सकते हैं। स्मरण रहे कि जैमिनी के पश्चात् महर्षि दयानन्द सरस्वती का ही प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने घोषणा की कि मनुष्य वेदानुगामी बनकर ही अपने परमलक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, इसी लक्ष्य को मूर्तरूप देने के हेतु उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की।

दुःख है कि हम अपने परिश्रम, त्याग, अनेक बलिदानों एवं प्रचार के पश्चात् भी अपने परम लक्ष्य **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** तो क्या, एक बस्ती को भी वैदिकधर्मी नहीं बना पाये। इसका मुख्य कारण है - हम आर्यजनों में आर्यसमाज की स्थापना के लक्ष्य को पूर्ण करने की तीव्र लगन और समर्पण की भावना का अभाव। विचार करें - क्या आज समाज में मूर्तिपूजा और उससे होने वाली हानियां, अनेक ईश्वरवाद, अन्धविश्वास, अज्ञान, गुरुडम आदि पूरी तरह समाप्त हो गये हैं ? यदि आपका उत्तर 'ना' में है तो इन बुराईयों को समाप्त करना हमारा कर्त्तव्य बनता है।

स्मरण रहे, नई इमारत के निर्माण के लिये उस स्थान पर खड़ी खण्डहर हुई इमारत को

विध्वंस करना अनिवार्य होता है। मन-वचन और कर्म की एकता का अपने-अपने अन्तःकरण में स्थापन तथा लोकेषणा का त्याग ही हम **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के स्वप्न को साकार रूप प्रदान करने में समर्थ होंगे। इसके लिए हमारा लक्ष्य क्या हो और हम क्या करें, आईये निम्न बिन्दुओं पर विचार कर लें -

1. हम स्वयं के प्रति ईमानदार बनें। स्वयं की मान्यताओं और उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनका प्रचार-प्रसार नैतिक कर्त्तव्य समझ, पूर्ण निष्ठा तथा समर्पित भाव से व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर ईमानदारी से कार्य करें।

2. वर्त्तमान में अधिकांश मनुष्य नहीं जानते कि वेद में क्या है ? वे ईश्वर के सच्चे स्वरूप और उसकी उपासना के सच्चे स्वरूप से भी सर्वथा अनभिज्ञ हैं। आर्यसमाजों को अपनी चारदीवारी से बाहर निकल, ईश्वर के वैदिक स्वरूप को समझाकर तथा अज्ञान-पाखण्ड के विरुद्ध प्रचार करना चाहिये।

3. वर्त्तमान समाज में पहले से अधिक ढ़ोंग, कुरीतियां, अन्ध-विश्वास, पाखण्ड, मत-मतान्तर, अनेक ईश्वरवाद, गुरुडम आदि अवैदिक मान्यतायें विद्यमान हैं। मनुष्य इनके मकड़जाल में फंसकर, प्राप्त मनुष्य जीवन को व्यर्थ नष्ट कर रहा है। यह सब ईश्वर के सच्चे वैदिक स्वरूप को न जानने के कारण से ही है। इन कुरीतियों से उन्हें छुड़ाना तथा उन्हें ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराना ही हम आर्यजनों का नैतिक कर्त्तव्य तथा ऋषिऋण से मुक्त होने और कृतघ्नता के पाप से बचने का उपाय है।

उपाय : -

(क) प्रत्येक आर्यसमाजें पोस्टर, बैनर, पैम्प्लेट्स आदि तथा ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों से सुसज्जित मोटर वाहनों द्वारा अपने-अपने नगरों तथा ग्रामों में ईश्वर के सच्चे स्वरूप एवं वैदिकधर्म उसकी उपासना पद्धति का प्रचार-प्रसार तथा खण्डन-मण्डन युक्त प्रवचनों तथा छोटे-छोटे ट्रैक्टों के मुफ्त वितरण तथा रियायती मूल्य पर वैदिक सिद्धान्तों की पुस्तकों के विक्रय द्वारा करें।

(ख) वाहनों पर प्रचार के निमित्त ऋषिभक्त समर्पित वैतनिक विद्वानों तथा भजनोपदेशकों को स्थायी रूप आर्यसमाजों द्वारा प्रचार के लिए रखा जाये और उनको उपयोग वैदिकधर्म के प्रचारार्थ निर्धारित क्षेत्रों में किया जाय। इस कार्य के व्यय के लिए एक समिति का गठन किया जाये, जो होने वाले व्यय की पूर्ण व्यवस्था सभासदों तथा धनी सज्जनों द्वारा करें। प्राप्त धन का आय-व्यय अत्यन्त पारदर्शी हो।

(ग) आर्यसमाजों के बुजुर्ग तथा वरिष्ठ सभासद अपना-अपना पद छोड़, आर्यसमाज के प्रबन्धन का कार्य नवयुवक पदाधिकारियों को सौंप, व्यक्तिगत अहंकार, दलबन्दी तथा अनावश्यक आलोचनाओं से मुक्त हो। उनके द्वारा आर्य तथा पौराणिक परिवारों में पारिवारिक यज्ञ तथा सत्सङ्ग का आयोजन, आर्यसभासदों के व्यक्तिगत दुःख-दर्द तथा उनकी विशेष प्रकार की समस्यायें सुलझाने का यथा सम्भव प्रयास, किसी भी साप्ताहिक सत्सङ्ग में उनकी अनुपस्थिति पर उनसे सम्पर्क, अपने-अपने

सम्पर्क में आने वाले समान विचारधारा वाले व्यक्तियों को आर्यसमाज का सदस्य बनाने, दो या तीन साथियों की अलग-अलग टोली बनाकर वैदिकधर्म की जानकारी हेतु उन्हें समय-समय पर वैदिकधर्म से सम्बन्धित पुस्तिका वितरण तथा वितरित पुस्तकें को उनसे वापिस लेकर उनके उस पुस्तक के विषय की जानकारी लेना-देना तथा वार्तालाप के कार्य को प्रमुख कर्त्तव्य समझ मन-कर्म और वचन से **'कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्'** के सपने को साकार रूप प्रदान करने का प्रयास और लक्ष्य बनाना चाहिये।

(घ) आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्गों में क्रमानुसार नियमित रूप से प्रत्येक सदस्य को यजमान के आसन पर बिठाना, यज्ञ के पश्चात् भजन आदि कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् सत्यार्थप्रकाश, ऋषिजीवन चरित्र, ऋषि ग्रन्थों का तथा कुछ वेदमन्त्रों का अर्थसहित पठन-पाठन करना-कराना आदि अनिवार्य करना चाहिये। ध्वनि विस्तारक यन्त्र का प्रयोग अवश्य करें।

(ङ) महिला आर्यसमाज का गठन कर, स्वयं के परिवारों तथा अन्य परिवारों की महिलाओं को वैदिकधर्म से जोड़ने के कार्य को प्रमुखता देना, प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य होना चाहिये।

(च) आर्यसमाज में प्रत्येक माह के किसी एक निश्चित सत्सङ्ग दिवस को सार्वजनिक रूप में प्रदान करने की दृष्टि से, आस-पड़ौस के बच्चों को उनके अभिभावक सहित तथा समीप के विद्यालयों के छात्रों तथा अध्यापकों को निमन्त्रित कर, उन्हें इस सत्सङ्ग में भाग लेने के लिए प्रेरित कर, उनके मध्य हल्के-फुल्के रूप से वैदिक सिद्धान्तों से युक्त भाषण करना-कराना। कविता पाठ तथा शिक्षाप्रद कहानियां सुनना-सुनाना। इन कार्यक्रमों में भाग लेने वाले बच्चों के उत्साह वर्द्धन हेतु उन्हें उपयोगी पुरस्कार देना।

(छ) हिन्दू समाज के प्रचलित पर्वों तथा त्यौहारों का वैदिक व्यवस्थानुसार सार्वजनिक रूप से आर्यसमाज परिसर अथवा सार्वजनिक स्थान पर आयोजन भी वैदिकधर्म के प्रचार का माध्यम बनाया जा सकता है।

(ज) आर्यसमाज की पहिचान हेतु क्षेत्र में आर्यवीर दल का गठन कर अपने-अपने क्षेत्र में, अन्य किसी संगठन द्वारा आयोजित सार्वजनिक कार्यक्रमों में कैम्प लगाने का कार्य तथा किसी आपात् स्थिति की दशा में पीड़ित व्यक्तियों को हर सम्भव सहायता देना, उनका कार्यक्षेत्र निर्धारित हो।

(झ) अपने-अपने परिवारों में संस्कार निर्माण दैनिक यज्ञ, आर्यपर्वों को वैदिक कर्मकाण्ड के अनुसार कराना तथा 5 वेदमन्त्रों से दैनिक यज्ञ में आहुति देना, तत्पश्चात् उनका अर्थ पाठ तथा मन्त्र-विचार को अपनी दिनचर्या का अनिवार्य अङ्ग बनाना।

इस निवेदन का अन्यथा अर्थ न लेकर गम्भीर मनन, चिन्तन तथा निदिध्यासन के द्वारा पूर्ण करने का प्रयास का प्रयत्न अपेक्षित होगा, इसी आशा के साथ - **"उत्तिष्ठ जाग्रत"** उठो, जागो और आलस्य को त्याग कर, अपने जीवन को वैदिकधर्म के प्रति समर्पित कर दो। ❐

जो सोवत है, सो खोवत है

रणवीर सिंह (प्रधान)
आर्यसमाज नारायण विहार, नई दिल्ली

जीवन का लक्ष्य क्या है ? इसकी उत्कंठा अधिकांशतः हमें जीवन के अन्तिम छोर तक बनी रहती है। जब हम उससे अवगत होते हैं जीवन के अन्तिम चरण में तो हमारा शारीरिक यन्त्र उसको प्राप्त करने में अक्षम हो जाता है और हम उस अक्षमता की स्थिति में कभी उस परमशक्ति पर तथा कभी अपने माता-पिता और बुजुर्गों पर उस अनभिज्ञता का आरोप-प्रत्यारोप करते हैं कि - यदि हमें समय पर ठीक वातावरण व दिशा निर्देश मिला होता तो हम आज अपने जीवन के लक्ष्य के समीप होते या उसे प्राप्त कर चुके होते। प्रभु ने तो जीवन की इन जटिलतम प्रक्रियाओं को सरलतम रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, पर हम अपनी गतिविधियों को टेढ़ी-मेढ़ी व जटिल बनाकर उसके द्वारा प्रस्तुत सरलतम रास्तों को लांघकर अपने बनाये चक्रव्यूह में फंसते जाते हैं।

प्रभु की असीम अनुकम्पा से जो एक मात्र शक्तिदाता है, पिछले 15 वर्षों से हमें ब्राह्ममुहूर्त में सैर पर जाने की शक्ति मिल रही है। ये प्रक्रिया मैं अपने मित्र के साथ एक पार्क में सम्पन्न करता हूं। सैर करते समय भौतिक रूप से हम साथ रहते हैं, परन्तु मानसिक रूप से हम पृथक् रहते हैं। प्रातः 4 बजे जब सब अपने बिस्तर में मीठी नींद का सुख लेते हैं, हम उस समय परमात्मा की दी हुई शक्ति के सहारे अकेले पार्क में भ्रमण करते हैं। सुनते हैं कि एक विशेष हारमोन्स का प्रातः चार बजे से छः बजे तक ब्राह्ममुहूर्त में उसका रिसाव होता है, जो पूरे दिन हमें कार्य करने की स्फूर्ति देता है। यह बात हम प्रतिदिन महसूस भी करते हैं, मुख्यतः उस दिन, जब हम सैर पर नहीं जाते।

मनुस्मृति में इसकी बहुत सुन्दर चर्चा भी की गई है, जो इस प्रकार है -

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत् धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च॥

(मनु0 4/92)

अर्थात् - ब्राह्ममुहूर्त या रात्रि के चौथे प्रहर, जो प्रातः 4 बजे से 6 बजे का समय होता है, में उठकर धर्म-अर्थ और परमात्मा का ध्यान करे। उसमें उठकर शरीर की शुद्धता, योगासन व प्राणायाम करने का पूर्ण निर्देश मिलता है, इसे प्राप्त करे।

प्रातःकाल में निद्रा त्याग के पश्चात् मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य वहन करते हुए, उस सर्वशक्तिमान्-सर्वान्तर्यामी प्रभु का स्मरण ऋग्वेद में दर्शाये गये पांच प्रातःकालीन मन्त्रों के माध्यम से प्रभु-स्मरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण करने के पश्चात् जैसे ही प्रथम कदम हम नीचे पृथ्वी पर रखते हैं, हमारे हृदय में आत्म-विश्वास की ज्योति जाग्रत होती है। इसके प्रमाण के लिए हम ऋग्वेद के निम्न मन्त्र का अवलोकन करें -

"प्रा॒ता रत्नं॑ प्रा॒तरित्वा॑ दधाति॒"

(ऋ0 1/125/1)

अर्थात् – प्रातःकालीन बेला में उठकर प्रभु नाम उच्चारित करनेवाला रत्नों को धारण करता है।

नवजात शिशु स्वयमेव प्रातःकाल उठ जाता है। पशु-पक्षी भी प्रातःकालीन बेला में चहचहाना शुरू कर देते हैं, जो स्वयमेव प्रभु-चिन्तन में ध्यान लगाने की प्रक्रिया में सहयोग देते हैं। शीतल मन्द सुगन्धित वायु हृदय-पटल को आह्लादित कर देता है। प्रकृति में एक नई आभा और नवजीवन-सा दृष्टिगोचर होता है।

इस समय में हम जो भी गतिविधि करते हैं, जैसे – प्रातः भ्रमण, योग, प्राणायाम, पठन-पाठन आदि, उसका साक्षी केवल प्रभु की उपस्थिति होती है। हमारी गतिविधियों में किसी प्रकार का कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता, केवल प्रभु को ऐश्वर्य चहुंओर बिखरा पड़ा रहता है; केवल बटोरने वाले की आवश्यकता है। उसकी दौलत का मूल्यांकन केवल वही कर सकता है जो प्रातःकालीन बेला में आये सांसों में ओ३म् के उद्गीथ का मन में उच्चारण कर आनन्दित हो सके। इस छोटे-से अन्तराल में हमें ये प्रक्रिया पूर्ण कर प्रभु हमारे साथ साक्षी बनकर रहता है, हमें सद्प्रेरणायें देता है, ग़लत रास्तों पर भटकने से बचाता है।

महर्षि दयानन्द जी ने **'सत्यार्थप्रकाश'** के सप्तम समुल्लास में इस प्रकार से आन्तरिक ध्वनि को बखान स्पष्टतः किया है –

"जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता या चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात को करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय-शङ्का और लज्जा आदि तथा अच्छे काम करने में अभय, निश्शंकता और आनन्दोत्साह उठता हैं वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

इस तरह से हर कदम पर तो हमारा साक्षी बनकर हमें प्रभु बुरे कार्यों से बचाता है, पर शर्त यही है कि प्रातःकाल में उसके द्वारा लुटाती हुई दौलत के हम सहभागी बनें। इसी बेला में बैठें, आत्मचिन्तन करें, अपने अन्दर सुषप्ति अवस्था में इन मानसिक शक्तियों को जगाने का प्रयत्न करें और शनैः-शनैः अपने जीवन के लक्ष्य को स्पष्ट कर, प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

भारतवर्ष में प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में सोने को पाप समझा जाता था। जब श्री भरत जी को यह पता लगा कि माता कौशल्या को यह सन्देह है कि श्रीराम को वन भेजने में मेरा भी हाथ है, तो उन्होंने अपने-आप को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कुछ शपथ खाईं थी, उनमें एक यह थी –

उभे सन्ध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्पयते।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यायोऽनुमते गतः॥

(बा0 रा0 अयो0. 75/44)

अर्थात् – जिसकी अनुमति से आर्य राम वन में गये हों, वह उस पाप का भागी हो, जो सूर्योदय व सूर्यास्त के समय सोनेवाले को होता है।

यदि हम संसार के महापुरुषों के जीवनों का अध्ययन करें तो हमें पता लगेगा कि वे सभी प्रातः उठने वाले थे। इस देश के पूज्य ऋषि-महर्षि सभी प्रातःकालीन बेला से अपने जीवन की गतिविधियों को जोड़े हुए थे। पाश्चात्य देशों में भी जो महापुरुष हुए हैं, वे सब प्रातः ही उठते थे और उन्होंने प्रातःकालीन बेला में उठने की प्रशंसा की है।

श्रीयुत् कोल्टल कहते हैं -

"प्रातः उठने से हमें न केवल स्वास्थ्य की ही प्राप्ति होती है, अपितु दीर्घायु भी प्राप्त होती है।"

लार्ड चेथम का कथन है -

"मैं तुम्हारे सोने के कमरे के पर्दों पर और दीवारों पर यह लिख देना चाहता हूं कि - यदि तुम प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में न उठोगे तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते।"

धर्मशास्त्रों के अनुसार निद्रात्याग के पश्चात् मनुष्यमात्र का प्रथम कर्त्तव्य उस परमपिता परमेश्वर, सर्वान्तर्यामी का स्मरण है, जिसकी असीम अनुकम्पा से हमें यह दुर्लभ मानव देह की प्राप्ति हुई है।

इस प्रकार से प्रातःकाल उठो और प्रभु का स्मरण करो, जिससे हमारे हृदय में आत्मविश्वास की ज्योति जागृत होती है और जीवन में शक्ति व साहस का संचार होता है। शनैः-शनैः इस पथ पर अग्रसर होकर और अपनी दैनिक दिनचर्या उस प्रभु को समर्पित कर हम अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। ❑

महारानी एलिजाबेथ का सच

डा. जे.एस.बालियान

एक दिन मैं टी.वी. में समाचार सुनने लगा, तो आ रहा था कि महारानी एलिजावेथ का इंटरव्यू उनका पोता ले रहा था। प्रश्न-उत्तर हो रहे थे। उनके पोते ने पूछा - दादी अब तो भारत स्वतन्त्र है। महारानी ने कहा - नहीं, भारत अभी भी गुलाम है। हमने भारत को आज़ादी नहीं दी, केवल उनको अधिकार दिया है। वे तो अपने राष्ट्रगान में अब भी हमारा गुणगान करते हैं। जैसे - जन-मन के अधिनायक ! भाग्यविधाता तेरी जय हो; आदि-आदि। पोते ने कहा - दादी ! फिर आप वहां से छोड़कर क्यों आ गये। दादी ने कहा - बेटा ! सुभाषचन्द्रबोस के नेतृत्व में इतना बड़ा आन्दोलन उठा, जिसने हमारे पैर उखाड़ दिये; उसी के कारण हमें भारत से आना पड़ा।

आपको विदित हो कि 21 अक्टूबर सन् 1943 में सुभाषचन्द्र बोस ने अण्डमान निकोबार से अंग्रेजों को भगाकर तिरंगा झण्डा फहराया था और भारत को स्वतन्त्र देश घोषित किया था। इस पर रूस आदि 12 देशों का समर्थन भारत के पक्ष में मिला था। सुभाषचन्द्र बोस ही स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए और शौकतअली को कहकर लालकिल पर तिरंगा फहराया था। उन्होंने अपनी मुद्रा भी चलाई थी, किन्तु सुभाषचन्द्र बोध के रहस्यमय विधि से लुप्त होने पर भारत के खलनायक ने सब कुछ भूमि के अन्दर गाड़ दिया। इन खलनायकों से विरोधाभास के कारण ही सुभाषचन्द्र बोस ने 29 मई 1939 को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया था। उसके बाद अनेकों विपत्ति सहकर भारत को आज़ाद कराया था। इतिहास का कड़वा सच है कि एक महानतम आदर्श सेनानी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को गान्धी-नेहरू की महत्त्वाकांक्षाओं का कोपभाजन बनना पड़ा। उनका यह मतभेद सुभाष को असीम नेतृत्व क्षमता, सूझबूझ, राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति भावीदृष्टि तथा नीति को लेकर रहा। सुभाष ने कहा था - हमारा प्रमुख कार्य साम्राज्यवाद का अन्त और भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता लाना है। आदि-आदि ..... ❑

चरित्र निर्माण का प्रमुख केन्द्र - माता

लक्ष्मीकान्ता चावला
पूर्व मन्त्री पंजाब

भारत देश के नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक परम्पराओं के विपरीत आज महिलाओं के विरुद्ध अपराध बढ़ते जा रहे हैं। विडम्बना यह कि अबोध बच्चियां भी वासना की आग में जलाई जा रही हैं। जब कभी कोई बड़ी घटना हो जाती है तो देश भर में प्रदर्शन-विरोध, सड़कों पर नारेबाजी और राजनीतिक ओराप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो जाता है। सच्चाई यह है कि बीमारी की जड़ तक पहुंचने का, उसका समाधान ढूंढ़ने का काम न समाज के स्तर पर हो रहा है, न सरकार के। और विपक्षी पार्टियों का तो हाल यह है कि बिल्ली के भागों से छिक्के टूटते रहें और उनकी दुकानदारी चलती रहे। हैदराबाद, मुजफ्फरपुर, उन्नाव, मलेरकोटला में जो कुछ भी हुआ, वह एक परिवार का नहीं, हमारे जीवन मूल्यों का चीरहरण है। प्रश्न यह है कि क्या कुछ अपराधियों को फांसी देकर या हैदराबाद जैसा मौके पर न्याय करके या उम्रकैद के लिए ज़िन्दगीभर जेल में सड़ने को छोड़कर बेटियों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाएगी ? अब तो कमाल हो गई।

सरकारों ने अपनी-अपनी नाक बचाने और साख बढ़ाने के लिए समय-असमय लड़कियों को घर छोड़ने के लिए पीसीआर बना दी, महिला पुलिस तैनात कर दी। दिल्ली की बसों में मुख्यमंत्री केजरीवाल ने मार्शल लगाने की घोषणा कर दी। संभवतः लग भी गए हैं, पर ऐसा क्यों नहीं किया जा रहा कि बेटी सुरक्षित चले, उसे पहरे की जरूरत ही न रहे। सारा समाज ही एक-दूसरे का संरक्षक बने। अफसोस के साथ मैं लिख रही हूं कि चाहे हर गली या कौने में पीसीआर बिठा दो या हर बस-रेलगाड़ी में जितने चाहो मार्शल लगा दो, जब तक देश के बच्चों के मन-मस्तिष्क को स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता, उन्हें केवल भारतीय ही नहीं अपितु मानवीय जीवन मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जाती, तब तक कोई भी अपराध, विशेषकर अबोध बच्चियों के विरुद्ध अपराध, महिलाओं का यौन शोषण रुक नहीं सकता। अमृतसर के व्यास में जो दुर्घटना हुई, स्कूल के ही नाबालिग विद्यार्थी ने बहुत छोटी बच्ची से अश्लील हरकत की, बहुत शोर मच रहा है, धरने दिये जा रहे हैं। ऐसे ही पंजाब के लुधियाना में एक 16 साल के बेटे ने पिता के साथ बैठकर शराब पी और फिर शराब पीने के लिए मां से धनराशि जब नहीं मिली तो नशे में मां के सिर पर डंडा मारा और उसे ठंडा कर दिया। यह उस पंजाब की हालत है जिस पंजाब के एक स्वास्थ्यमंत्री यह कह चुके हैं कि शराब नशा नहीं, क्योंकि सरकार बेचती है। वैसे जुआ भी वही अपराध की श्रेणी में आता है, जो सरकार को टेक्स दिए बिना या सरकारी मान्यता प्राप्त स्थानों पर खेला जाए। सीधी बात जो बुरा काम सरकारी मान्यता से किया जाए, सरकार के ख़जाने में नोट भेजकर किया जाए, वह

तो सही है, अन्यथा अपराध। आज की चिन्ता का विषय यह है कि आखिर हमारे देश के नन्हे-मुन्ने बच्चे भी यौन अपराधों में क्यों फंस गए। मुझे ऐसा लगता है कि मां की पाठशाला धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। नानी-दादी की परिपक्व सङ्गति और कहानियों से बच्चे वंचित हैं। स्कूलों में बचपन में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा, नैतिक उपदेशों से हमारे तथाकथित नेताओं को कष्ट होने लगा है। सीधी बात है रहीमदास से यह कहा है -

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसङ्ग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजङ्ग॥

जिन बच्चों को घरों से अच्छे संस्कार मिलते हैं, जो महापुरुषों के जीवन से मां की गोद में और रसोई में खाना खाते-खाते परिचित हो जाते हैं, वे बच्चे न तो किशोरावस्था में भटकते हैं और फिर युवावस्था में पथभ्रष्ट होने का कोई कारण ही नहीं रहता। हमारे देश का इतिहास है- एक मां थी मंदालसा। इतने प्रबल संस्कारों वाली महिला, जो बाल्यकाल में ही अपने पुत्रों को सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति वैराग्य का उपदेश देकर आत्मज्ञान का बोध करवा देती थी। एक मां थी - सुनीति, जिसने पांच वर्षीय पुत्र ध्रुव को भी ऐसा उपदेश शायद अपने दूध के साथ ही दे दिया कि वह कठोर तपस्या करके भगवान् को प्राप्त करने का प्रशस्त मार्ग पा गया। याद रखना होगा लक्ष्मण जी की माता लक्ष्मण के त्याग के पीछे खड़ी थी। अगर सुमित्रा न चाहती तो कभी भी लक्ष्मण हमारे इतिहास में, साहित्य में वैसे पुत्र, वैसे भाई बनकर न चमकते, जैसे वे आज हैं। आधुनिक काल में भी जीजाबाई को कौन नहीं जानता, जिसने विवाह से पूर्व ही यह निश्चय कर लिया था कि जब वह मां बनेगी तो उसका पुत्र देश-धर्म का रक्षक होगा और केवल हिन्दू पुत्रियों का ही नहीं, अपितु हर बेटी का संरक्षक बनेगा, पालन करेगा। यह तो कल की कहानी है, यह बात मां की है, महिला का प्रताप यह है कि राजा जसवंत सिंह की पत्नी महामाया ने ही उसे वीरता से लड़ते हुए विजयश्री प्राप्त करने में सफल बनाया। एक नहीं, अनेक मां के प्रताप की कथाएं हैं। गुरुकुलों में भी केवल शरीरों का निर्माण नहीं होता था, मन-आत्मा और बुद्धि का परिष्कार भी होता था, विकास भी।

क्या आज यह सम्भव नहीं, सम्भव तो है; पर हमारे देश के शासकों को प्रशासकों को शिक्षा की चिन्ता नहीं। सच तो यह है कि मैकाले की रटी-रटाई कहानियां उसी की शिक्षा पद्धति और पाश्चात्य जगत् की होड़ में हमने अपनी नई पीढ़ी विशेषकर समृद्ध परिवारों की नई पीढ़ी को जड़ों से पूरी तरह उखाड़ने की तैयारी कर ली है। बहुत कुछ उखाड़ भी चुके हैं। क्या कभी सरकारें सोचेंगी कि ऐसा कोई व्यक्ति अध्यापक न बने तो किसी भी प्रकार का नशा करता है या शराब पीता हे। क्या कभी कोई हिम्मत वाली सरकार यह फैसला करेगी कि उन व्यक्तियों को जनप्रतिनिधि बनने के लिए अपनी पार्टी का टिकट न दिया जाए, जिन पर महिलाओं के विरुद्ध अपराध के साथ ही अन्य कई प्रकार के दाग़ लग चुके हैं। वे अदालतों में आरोपी हैं। यह ठीक है कि सरकारों ने अपनी सुविधा के लिए यह कर दिया कि आरोपी जनप्रतिनिधि बन सकता है, क्योंकि वे

अदालत द्वारा अपराधी घोषित नहीं किया गया। बच्चों को मानसिक तौर पर हर प्रकार के अपराध से, बुराई से, बेईमानी से बचने की शिक्षा दी जाए, पर जिन घरों में स्वयं पिता रिश्वत की कमाई लेकर आते हैं, बच्चों के साथ बैठकर शराब पीते हैं और जिस देश की सरकारें यह नियंत्रित नहीं कर पातीं कि इंटरनेट पर परोसी जाने वाली अश्लीलता से बच्चों को बचा लिया जाए, उस देश में वासना की भूख निश्चित ही बढ़ेगी। शरीरों का प्रदर्शन, शरीरों की खूबसूरती, शारीरिक सुन्दरता बढ़ाने के लिए तरह-तरह के प्रसाधन इसके अतिरिक्त हमारे टी.वी. चैनलों में क्या दिखाया जा रहा है ?

क्या सरकार नहीं जानती कि अबोध बच्चे बहुत जिज्ञासु होते हैं। वे जो देखते हैं उसके विषय में जानना चाहते हैं और यही देखना और जानना देश को, समाज को इस हालत में ले आया है कि स्कूलों में पढ़ने वाले अबोध बच्चे भी अब बहुत छोटी बच्चियों के प्रति कामभव रखते हैं। वे भाव भूलते जा रहे हैं, जो वर्ष में दो बार दुर्गाष्टमी के दिन बच्चियों की पूजा करके, चरण धोकर, तिलक लगाकर, प्रसाद खिलाकर पैदा करने का प्रयास सदियों से हमारा देश करता आ रहा है। सरकारें आज ही समझ जाएं तो अच्छा है। फिर ऐसा न हो कि चिड़िया खेत चुग जायें और यह डंडे लेकर पीछे भागते रहें। सरकार जरा नज़दीक आकर देखे कि जिन स्कूलों को हर आयु के बच्चों के लिए सहशिक्षा के हवाले कर दिया गया है, वहां क्या हो रहा है। कभी इस विषय पर अध्यापकों को पूछें कि किस-किस तरह की विषम परिस्थिति का सामना उन्हें करना पड़ रहा है। अमृतसर के ही एक स्कूल में जो हुआ, वह कई जगह हो रहा है। दो लड़कियां आपस में गुत्थमगुत्था हो गईं, एक-दूसरे के बाल नोंच रही हैं। लड़ाई का कारण यह कि एक के मित्र को दूसरी लड़की पसन्द करने लगी। एक स्कूल में तो नाबालिग कहे जानेवाले बच्चे अपनी किसी नाबालिग लड़की दोस्त के लिए ही बाहर से लड़कों को लाकर डंडे भी चलाने लगे। यह सब हो रहा है, पर देखना नहीं चाहतीं सरकारें। भारत सरकार से, मानवाधिकारियों से, शिक्षाविदों से यह निवेदन है कि समय रहते जागें, देश को जगायें, शिक्षा ऐसी दें जो केवल शरीर पोषण और मोटा पैकेज देने के लिए काफी न हो, मानसिक और नैतिक विकास में भी सहायक हो। माताओं को अपने बच्चे घरों में ही संभालने होंगे। उन्हें स्कूल में केवल बढ़िया भोजन वाला टिफिन नहीं, अपितु ऐसी कथा-कहानी सुनाकर भी भेजना है, जिससे वे मंदालसा और सुमित्रा के बच्चों जैसे संस्कारी हों। पिता नशे छोड़ दें। कम से कम उस नशेड़ी धंधे में बच्चों को न फसायें। सरकारें सुन लें - शिक्षा बदलें- बदलवायें, अन्यथा ऐसी जेलें तैयार कर दें, जहां यौन अपराधियों को उम्रभर के लिए रखा जाए या फांसी के इतने फन्दे तैयार कर दें, जहां हर बलात्कारी को फांसी पर लटका दिया जाए या फिर बलात्कारी के माथे पर अपराधी होने का चिह्न लगाकर, उन्हें शारीरिक दृष्टि से नपुंसक बनाकर छोड़ दिया जाए, पर न देश के लिए हैं, न समाज के लिए, न मानव के लिए और न विशेषकर हमारे भारत के लिए। ❑

क्या प्रभु न्यायकारी एवं दयालु है ?

प्रस्तोता – **कु0 सुमन**
नारायण विहार, नई दिल्ली

परमेश्वर कर्माध्यक्ष है। अर्थात् वह प्राणीमात्र को उसके किये शुभ-अशुभ कर्मों का फल देता है। शुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख-शांति-प्रगति एवं सात्विक प्रवृत्ति का अभ्युदय होता है तथा अशुभकर्मों के फलस्वरूप दुःख-अशांति-अवनति एवं तामसिक प्रवृत्ति की वृद्धि होती है। सारे कर्मों का फल परमेश्वर पूर्ण न्यायपूर्वक निष्पक्षभाव से प्रदान करता है, इसलिये उसे न्यायकारी कहते हैं।

समाज की सारी व्यवस्था न्यायप्रणाली पर टिकी हुई है। समाज का कोई भी व्यक्ति अपने अच्छे कार्य का फल तो सहर्ष चाहता है, परन्तु अशुभ कर्मों के फलस्वरूप वह दण्ड भुगतने से बचने का पूर्ण प्रयत्न करता है। रंगे हाथों पकडे जाने पर दण्ड से बचने के लिए वकील करता है, घूस देता है, अदालत में रोता है, गिड़गिड़ाकर क्षमा मांगता है, न्यायाधीश की प्रशंसा करता है, परन्तु इन सबसे प्रभावित न होकर न्यायाधीश न्यायपूर्वक समुचित दण्ड देता है। यदि न्यायाधीश अपराधी के प्रयत्नों से प्रभावित होकर न्यायपूर्वक अपराधी के प्रयत्नों से प्रभावित होकर न्यायपूर्वक दण्ड न देकर क्षमा कर देवे तो वह न्यायाधीश न्यायकारी नहीं रहेगा तथा इस प्रकार न्यायव्यवस्था पर समाज का विश्वास उठ जायेगा। क्षमा प्राप्त अपराधी का और अधिक अपराध करने का प्रोत्साहन मिलेगा तथा न्यायानुगामी, निर्दोष व्यक्ति, अपराधी व्यक्तियों द्वारा पीड़ित होते रहेंगे। जो स्थिति समाज में न्यायाधीशों की है, वही सर्वोच्च न्यायकारी परमेश्वर की भी है।

अपराधी दण्ड पाने से बचने के लिए भरपूर प्रयत्न करता है, पर पकड़ा इसलिये जाता है, क्योंकि अपराधी को पकड़ने वाली पुलिस अपराधी से अधिक शक्तिशाली है। अधिकतम शक्तिशाली अपराधी भी परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् होने के कारण उससे बच नहीं सकते। ईश्वर के सर्वव्यापक होने से कोई प्राणी वहीं भी छिपकर अपराध करे, उससे बच नहीं सकता तथा उसकी न्यायव्यवस्था हेतु अदालत गवाह इन सबकी इसलिये आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सब अल्पज्ञ न्यायाधीश हेतु चाहिये। सर्वज्ञ परमेश्वर के तो स्वतः सब कुछ ज्ञान में है, अतः उसके न्याय से कोई बच नहीं सकता।

परमेश्वर दयालु है –

परमेश्वर की दयालुता प्रत्यक्ष है, स्वतः प्रमाणित है तथा वेदादि शास्त्रों में भरपूर प्रमाण इसके समर्थन में उपलब्ध हैं। उस दयालु प्रभु ने हीरा जन्म मानव शरीर दिया, जो सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। बालक के जन्म के साथ ही उसकी माता के स्तन में दुग्ध उत्पन्न किया। हमारी जीवनरक्षिणी वायु एवं जल निर्मित किये। मानव के भरण-पोषण के लिए नाना प्रकार के अन्न,

फल, वनस्पतियां, चिकित्सा हेतु औषधियां नाना प्रकार के मानव के लिए सहायक पशु-पक्षियों, जलचर, नभचर आदि की रचना की। संसार के सारे वैज्ञानिक मिलकर भी एक गेहूं का दाना तो क्या, एक घात की पत्ती भी नहीं बना सकते। माता नहीं जानती कि उसके उदर में बालक-बालिका का विकास कैसे हो रहा है। कृषक नहीं जानता कि बीज से पौधा व वृक्ष किस प्रक्रिया से बनते हैं, कैसे अनाज के दाने पौधे पर व फल वृक्ष पर निर्मित होते हैं। यह सब उस दयालु प्रभु की दया का ही परिणाम है।

उस दयालु प्रभु ने मानव की सर्वश्रेष्ठ दान बुद्धि का प्रदान किया है। बुद्धि के बल पर मानव ने संसार के सारे प्राणियों को वश में कर उनसे यथायोग्य सेवायें लीं। जो हाथी मानव को पैरों तले कुचलकर चटनी बना सकता है, उसी हाथी को मानव ने बुद्धिबल से एक हाथ लम्बे अंकुश से वश में कर, सवारी व बोझा ढोने के काम में ले लिया। जो जंगल का शक्तिशाली शेर अपने एक पंजे की मार से मनुष्य के प्राण ले सकता है, उस शेर को बुद्धिबल से ही मानव ने सर्कस के पिंजरे में हण्टर के जोर से खेल खिलाये। बुद्धिबल से मानव ने सागरों को पार किया, वायु में तीव्र वेग से उड़ा, चन्द्रलोक तक पहुंचा, अन्यत्र अपने राकेट आदि भेजे तथा आविष्कारों के बल से जीवन सुखी बनाया। यह सब तथा अन्य आश्चर्यजनक कार्य मानव ने उस बुद्धिबल से ही किये, जो प्रभु की दया से प्राप्त हुई। इसलिए आप यहां निम्नवेद मन्त्र पर थोड़ा-सा विचार करें -

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्म्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥

(ऋ0 5/64/3)

अर्थात् - परमेश्वर दण्ड देता है, किन्तु हिंसा के भाव से नहीं, अपितु कल्याण की भावना से।

अतः कल्याण चाहनेवालों मनुष्यों को चाहिये कि वे दयालु-कृपालु-न्यायकारी प्रभु के बताये मार्ग वेद के सन्देश को सुने और उसके अनुसार अपना आचरण करना का निरन्तर प्रयत्न करे। अन्यथा कल्याण असम्भव है। ❐

नारी-महिमा

नन्दाबल्लभ पालीवाल

निज उर झोला संतापों को करुणा बन कहती आई।
नारी ही तो जीवन दर्शन इस जग को देती आई।

जन्म दिया नारी ने जग को और सेवा करती आई।
नारी ही तो इस जग की पीड़ाएं हरती आई।

ममता और करुणा की देवी इस जग पर छाती आई।
गरल लिया चाहे निज उर में अमृत है देती आई।

अपने प्यार से नारी ने ही जीवन की बगिया महकाई।
डगर डगर हर वसुन्धरा की नारी ने ही चमकाई।

नारी पर ही जीवन दर्शन इस जग का है टिका हुआ।
नारी ही तो घर आंगन की किस्मत चमकाती आई।

इतिहासों के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित होती है आई।
संकट क्षण में भी नारी ने अपनी वीरता दिखलाई।

बलिदानों में कभी किसी से नारी पीछे नहीं रही।
जौहर व्रत लेकर नारी ने रिपु को शिक्षा सिखलाई।

वसुन्धरा पर पावन चिन्तन नारी ने ही है बांटा।
मां की ममता और प्यार की गङ्गा बन बहती आई।

युग प्रवर्त्तक - 'महर्षि दयानन्द'

प्रस्तोता - **कु0 मुदिता सिंह**
नारायण विहार, नई दिल्ली

महर्षि दयानन्द जी के जीवन में दो घटनाएं हुईं - एक घटना शिवरात्रि की और दूसरी चाचा एवं बहन की मृत्यु। इन दोनों घटनाओं ने दयानन्द को महान् बनाया। शिवरात्रि की घटना ने मूर्तिपूजा से मन को हटाकर ऋषि बनाया। बहन एवं चाचा की मृत्यु ने अमरत्त्व की ओर प्रेरित किया, मोक्ष का अधिकारी बनाया। शिवरात्रि में दयानन्द ने वैराग्य को धारण कर अपने भाव को छोड़ा, पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। चलते समय यह विचार भी मन में नहीं आया कि मैं फिर से माता-पिता के दर्शन करता चलूं।

महर्षि दयानन्द जी ने नदी-नालों-झाड़ियों को पार करते हुए सच्चे गुरु के चरणों में शिक्षा प्राप्त करके दक्षिणा के रूप में अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया। एक अकेले संन्यासी ने अपनी विद्वत्ता, निर्भीकता और अलौकिक साहस से विश्व की आसुरी शक्तियों को चुनौती देकर परास्त किया। उन्होंने एक ऐसे विश्व की आधारशिलाा रक्खी, जिसमें अज्ञान-अनाथ और अभाव के लिये कोई स्थान नहीं था। हमारे महान् महर्षि दयानन्द जी ने अपने महान् स्वप्नों को लेकर सन् 1875 में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। ईश्वर की पवित्र वेदवाणी में **'अहं भूमिमददामार्य्याय'** के रूप में स्वयं प्रभु ने धरती को संवारने का दायित्व हम आर्यों पर डाला है। आज समस्त आर्यजगत् को जगाने और चेताने की आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द ने आर्यजगत् के लिए क्या नहीं किया -

गिने जायें मुमकिन सेहरा के जर्रे,
समन्दर के कतरे फ़लक के सितारे।
मग़र कैसे मुमकिन हैं कि गिन सकें हम,
ऐहसां किये हैं ऋषि ने वो सारे॥

आज की सुधार प्रवृत्ति पर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के प्रभाव की छाप दृष्टिगोचर होती है। आज हम 5000 वर्षों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें दयानन्द जैसा वेदों के यथार्थरूप का व्याख्याता, नाना मत-सम्प्रदायों के जल से मानवजाति से मुक्त कराकर एकल और प्रेम के सूत्र में बांधकर ऊंच-नीच की दीवार गिराकर सबको समान अधिकार दिलाने वाले निडर होकर पाखण्डों की पोल खोलकर सत्य सनातन वैदिकधर्म का झण्डा फहरानेवाला ब्रह्मचारी, दिव्य दृष्टा, राष्ट्रवादी युगपुरुष ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। जिनके दर्शन मात्र से अनेक पतित मनुष्य के जीवन पवित्र हो गये। 'भारत' भारतवासियों का यह नारा सर्वप्रथम दयानन्द ने ही दिया। अंग्रेजों द्वारा हो रहे शोषण के खिलाफ विद्रोह खड़ा करने का श्रेय भी स्वामी जी को ही प्राप्त है। मातृभाषा गुजराती होने के बावजूद भी आपने अपने ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे। आपने ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करवाने का सर्वप्रथम प्रयास किया। हमारे बीच में महर्षि

जी के आने से विधवा-विवाह प्रचलित हुए, बाल-विवाह कम हुए, स्त्रियों की शिक्षा जारी हुई। स्त्रियों के प्रति स्थिति हीन-भावना उच्च-भावना में परिवर्तित हुई। जगदम्बा के सिंहासन पर बैठा दिया नारी को। दलितों और पतितों के उद्धार-कार्य का सूत्रपात हुआ। शिक्षा का प्रेम बढ़ा, शुद्धि जारी हुई। मूर्तिपूजा और अन्धविश्वासों के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। यदि महर्षि जी भारत में उत्पन्न नहीं होते तो आज महात्मा गान्धी, लोकमान्य तिलक के समान कार्यकर्त्ता और देशभक्तों के दर्शन प्राप्त न होते। नेपोलियन और सिकन्दर जैसे महान् सम्राट् संसार में बहुत हो चुके हैं, परन्तु महर्षि से बढ़कर और शक्तिशाली विजेता उत्पन्न ही नहीं हुआ। महर्षि दयानन्द के उपकार विश्व के समस्त मानव समाज पर है।

वस्तुतः महर्षि दयानन्द के रूप में समाज को एक नया पथ-प्रदर्शक मिला था। जिन्होंने अपना सारा जीवन समाज के कार्यों में लगाया। जब सारे संसार में वेद की शिक्षा लुप्त-सी हो गई थी, पाखण्डों का पुनर्विस्तार हो रहा था, तब उन्होंने अपने कर्त्तव्य को समझा कि इस देश में फैली कुरीतियों का सर्वनाश किया जाये। शुभ कार्यों से अलगाव मानव का स्वभाव बन गया था। दयानन्द के प्रताप से ही एक बार पुनः मानव समाज विघटन से पृथक् होकर सङ्गठित हुआ। पुनः शुभ कार्यों को मानव समाज अपनाने के लिए जीवन का ध्येय बनाया। दयानन्द का सामाजिक कार्य देखें तो उनके सदृश कोई भी समाजसुधार इनसे आगे नहीं निकल पायेगा। वास्तव में वे ही युग-प्रवर्त्तक थे। ❑

क्या आप जानते हैं ?

सुप्रिया शर्मा

*** महात्मा गांधी की 125वीं जयन्ती पर कौन-सा पुरस्कार प्रारम्भ हुआ ?**

(गान्धी शान्ति पुरस्कार)

*** पैरिस के एफिल टावर का प्रारूप किसने तैयार किया था ?**

(गुस्ताव एफिल ने)

*** रूस का टावर जो एफिल टावर से दुगना ऊंचा है, वह कौन-सा है ?**

(ओस्टानकिना टी.वी. टावर)

*** अंग्रेजी भाषा में अल्कोहल शब्द किस भाषा से लिया गया है ?**

(अरबी भाषा से)

*** विश्व में लगभग कितनी भाषाओं का बोलने में प्रयोग होता है ?**

(लगभग 2792 भाषायें)

*** भारत की प्रथम महिला शासक कौन थी ?**

(रजिया सुलताना)

*** कौन-सा ब्लड ग्रुप ए-बी ग्रुप वालों को दिया जा सकता है ?**

(ओ ग्रुप)

*** गोवा राज्य से निर्यात होने वाले कौन-कौन से खनिज़ हैं ?**

(लोहा और मैग्नीज़)

*** विश्व का सबसे बड़ा दूसरा समुद्रतट कहां पर है ?**

(भारत में चेन्नई का समुद्रतट)

*** किस विदेशी व्यक्ति को पहली बार भारत-रत्न पुरस्कार मिला ?**

(अब्दुल गफ्फार खान को)

*** विश्व के वृक्षों में कौन-सा वृक्ष सबसे अधिक विशाल माना जाता है ?**

(शमैन वृक्ष)